ॐ

रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला.

श्रीमत्—उमास्वातिविरचितं

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् ।

हिंदीभाषानुवादसहितम्.

सम्बन्धकारिकाः

सम्यग्दर्शनशुद्धं यो ज्ञानं विरतिमेव चाप्नोति ।
दुःखनिमित्तमपीदं तेन सुलब्धं भवति जन्म ॥ १ ॥
जन्मनि कर्मक्लेशैरनुबद्धेऽस्मिंस्तथा प्रयतितव्यम् ।
कर्मक्लेशाभावो यथा भवत्येष परमार्थः ॥ २ ॥
परमार्थालाभे वा दोषेष्वारम्भकस्वभावेषु ।
कुशलानुबन्धमेव स्यादनवद्यं यथा कर्म ॥ ३ ॥
कर्माहितमिह चामुत्र चाधमतमो नरः समारभते ।
इह फलमेव त्वधमो विमध्यमस्तूभयफलार्थम् ॥ ४ ॥
परलोकहितायैव प्रवर्तते मध्यमः क्रियासु सदा ।
मोक्षायैव तु घटते विशिष्टमतिरुत्तमः पुरुषः ॥ ५ ॥
यस्तु कृतार्थोऽप्युत्तममवाप्य धर्मं परेभ्य उपदिशति ।
नित्यं स उत्तमेभ्योऽप्युत्तम इति पूज्यतम एव ॥ ६ ॥
तस्मादर्हति पूजामर्हन्नेवोत्तमोत्तमो लोके ।
देवर्षिनरेन्द्रेभ्यः पूज्येभ्योऽप्यन्यसत्त्वानाम् ॥ ७ ॥
अभ्यर्चनादर्हतां मनःप्रसादस्ततः समाधिश्च ।
तस्मादपि निःश्रेयसमतो हि तत्पूजनं न्याय्यम् ॥ ८ ॥

तीर्थप्रवर्तनफलं यत्प्रोक्तं कर्म तीर्थकरनाम ।
तस्योदयात्कृतार्थोऽप्यर्हंस्तीर्थं प्रवर्तयति ॥ ९ ॥
तत्स्वाभाव्यादेव प्रकाशयति भास्करो यथा लोकम् ।
तीर्थप्रवर्तनाय प्रवर्तते तीर्थकर एवम् ॥ १० ॥
यः शुभकर्मासेवनभावितभावो भवेष्वनेकेषु ।
जज्ञे ज्ञातेक्ष्वाकुषु सिद्धार्थनरेन्द्रकुलदीपः ॥ ११ ॥
ज्ञानैः पूर्वाधिगतैरप्रतिपतितैर्मतिश्रुतावधिभिः ।
त्रिभिरपि शुद्धैर्युक्तः शैत्यद्युतिकान्तिभिरिवेन्दुः ॥ १२ ॥
शुभसारसत्त्वसंहननवीर्यमाहात्म्यरूपगुणयुक्तः ।
जगति महावीर इति त्रिदशैर्गुणतः कृताभिख्यः ॥ १३ ॥
स्वयमेव बुद्धतत्वः सत्त्वहिताभ्युद्यताचलितसत्वः ।
अभिनन्दितशुभसत्वः सेन्द्रैर्लोकान्तिकैर्देवैः ॥ १४ ॥
जन्मजरामरणार्त्तं जगदशरणमभिसमीक्ष्य निःसारम् ।
स्फीतमपहाय राज्यं शमाय धीमान्प्रवव्राज ॥ १५ ॥
प्रतिपद्याशुभशमनं निःश्रेयससाधकं श्रमणलिङ्गम् ।
कृतसामायिककर्मा व्रतानि विधिवत्समारोप्य ॥ १६ ॥
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रसंवरतपःसमाधिबलयुक्तः ।
मोहादीनि निहत्याशुभानि चत्वारि कर्माणि ॥ १७ ॥
केवलमधिगम्य विभुः स्वयमेव ज्ञानदर्शनमनन्तम् ।
लोकहिताय कृतार्थोऽपि देशयामास तीर्थमिदम् ॥ १८ ॥
द्विविधमनेकद्वादशविधं महाविषयममितगमयुक्तम् ।
संसारार्णवपारगमनाय दुःखक्षयायालम् ॥ १९ ॥
ग्रन्थार्थवचनपटुभिः प्रयत्नवद्भिरपि वादिभिर्निपुणैः ।
अनभिभवनीयमन्यैर्भास्कर इव सर्वतेजोभिः ॥ २० ॥
कृत्वा त्रिकरणशुद्धं तस्मै परमर्षये नमस्कारम् ।
पूज्यतमाय भगवते वीराय विलीनमोहाय ॥ २१ ॥
तत्वार्थाधिगमाख्यं बह्वर्थं संग्रहं लघुग्रन्थम् ।
वक्ष्यामि शिष्यहितमिममर्हद्वचनैकदेशस्य ॥ २२ ॥
महतोऽतिमहाविषयस्य दुर्गमग्रन्थभाष्यपारस्य ।
कः शक्तः प्रत्यासं जिनवचनमहोदधेः कर्तुम् ॥ २३ ॥

शिरसा गिरिं विभित्सेदुच्चिक्षिप्सेच्च स क्षितिं दोर्भ्याम् ।
प्रतितीर्षेच्च समुद्रं मित्सेच्च पुनः कुशाग्रेण ॥ २४ ॥
व्योम्नीन्दुं चिक्रमिषेन्मेरुगिरिं पाणिना चिकम्पयिषेत् ।
गत्यानिलं जिगीषेच्चरमसमुद्रं पिपासेच्च ॥ २५ ॥
खद्योतकप्रभाभिः सोऽभिबुभूषेच्च भास्करं मोहात् ।
योऽतिमहाग्रन्थार्थं जिनवचनं संजिघृक्षेत ॥ २६ ॥
एकमपि तु जिनवचनाद्यस्मान्निर्वाहकं पदं भवति ।
श्रूयन्ते चानन्ताः सामायिकमात्रपदसिद्धाः ॥ २७ ॥
तस्मात्तत्प्रामाण्यात् समासतो व्यासतश्च जिनवचनम् ।
श्रेय इति निर्विचारं ग्राह्यं धार्यं च वाच्यं च ॥ २८ ॥
न भवति धर्मः श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हितश्रवणात् ।
ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्ध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ॥ २९ ॥
श्रममविचिन्त्यात्मगतं तस्माच्छ्रेयः सदोपदेष्टव्यम् ।
आत्मानं च परं च हि हितोपदेष्टानुगृह्णाति ॥ ३० ॥
नर्ते च मोक्षमार्गाद्धितोपदेशोऽस्ति जगति कृत्स्नेऽस्मिन् ।
तस्मात्परमिममेवेति मोक्षमार्गं प्रवक्ष्यामि ॥ ३१ ॥

॥ इति सम्बन्धकारिकाः समाप्ताः ॥

जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे शुद्ध ज्ञान तथा (उसकेद्वारा इस संसारसे) विरतिको प्राप्त करता है, (संसारमें) अनेक दुःखोंका कारण होनेपरभी यह जन्म, उस मनुष्यको उत्तम लाभदायक है. ॥ १ ॥ अनेक प्रकारके कर्म्मोंसे उत्पन्न हुवे क्लेशोंसे निरन्तर संबद्ध इस जन्ममें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि, जिस्से कर्मजनित क्लेशरहित मोक्षरूप परमार्थ सिद्ध हो. ॥ २ ॥ यदि मोक्षरूप परमार्थका लाभ न हो, तथा जन्मके आरम्भकारी कपायरूप दोषोंकी अस्तितामें, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि, जिस्से कुशल अर्थात् शुभप्रयोजनसहित, और निन्दारहित ही कर्म्म हो. ॥ ३ ॥ अत्यन्त अधम मनुष्य, इस लोक तथा परलोकमें दुःखदायक कर्मोंका ही आरंभ करता है, अधम मनुष्य, इस लोकमें केवल फलदायक कर्मोंका आरम्भ करता है, और विमध्यम श्रेणीका मनुष्य, उभय लोकमें फलदायक कर्मोंको करता है; और मध्यमजन परलोकमें हितकारी क्रिया-ओंमें सदा प्रवृत्त रहता है. परन्तु विशिष्टबुद्धि उत्तम मनुष्य तो केवल मोक्षकेही लिये निरन्तर प्रयत्न करता है. ॥ ४।५ ॥ और जो मनुष्य, उत्तम धर्मको प्राप्त करके स्वयं कृतार्थ हो गया है, और अन्य मनुष्योंको धर्मका उपदेश देता है, वह निरंतर उत्तम जनोंसे भी अति उत्तम तथा सबका पूजनीय है ॥ ६ ॥ इस हेतुसे उत्तमोत्तम जो अर्हन्

भगवान् हैं वेही लोकमें अन्य प्राणियोंके पूज्यदेवर्षिनरेन्द्रोंसेभी पूजाके योग्य हैं. ॥ ७ ॥ अर्हन् भगवान्की पूजासे मनकी प्रसन्नता प्राप्त होती है, और मनके प्रसाद अर्थात् प्रसन्नतासे समाधि प्राप्त होती है, तथा समाधिरूप योगसे निःश्रेयस मोक्ष प्राप्त होता है; इस कारणसे अर्हन् भगवान्की पूजाही इस लोकमें उत्तम वस्तु है. (क्योंकि उसीके द्वारा मोक्षपदकाभी लाभ होता है) ॥ ८ ॥ तीर्थप्रवर्तनरूप (संसारसे उद्धार करनेवाले) फलदायक जो तीर्थंकरनाम कर्म शास्त्रमें कहा गया है उसीके उदयसे यद्यपि तीर्थंकर अर्हन् भगवान् कृतार्थ हैं, तथापि तीर्थकी प्रवृत्ति अर्थात् संसारसागरसे पार उतारनेवाले. धर्मका उपदेश करतेही हैं. ॥ ९ ॥ उसी तीर्थंकरनामकर्मसे, जिस रीतिसे सूर्य्य लोकमें प्रकाश करता है उसी रीतिसे तीर्थके प्रवर्तनके अर्थ तीर्थंकर लोकमें प्रवृत्त होते हैं. ॥ १० ॥ जो कि अनेक जन्मोंमें शुभ कर्मोंके निरन्तर सेवनसे भावित अर्थात् पूजित भाव, सिद्धार्थ नरेन्द्रोंके कुलमें प्रदीपके समान समुज्वल ज्ञातसंज्ञक इक्ष्वाकुवंशके क्षत्रियोंमें, जन्म लिया. ॥ ११ ॥ तथा अति शुद्ध, और अप्रतिपाती पूर्व जन्मोंमें प्राप्त, मति, श्रुत, तथा अवधि, इन तीन ज्ञानोंसे युक्त होकर ऐसे शोभित हुये जैसे शैत्यद्युति (उष्णतारहित प्रकाश) तथा कान्तिगुणोंसे युक्त होनेसें चन्द्रमा ॥ १२ ॥ तथा शुभ, सार, सत्व, संहनन (शरीर-रचनाविशेष) वीर्य्य, और माहात्म्यरूप गुणोंसे युक्त, तथा त्रिदश (अर्थात् शास्त्रोक्त तीस) गुणोंसहित जगत्में महावीरस्वामी इस नामसे प्रसिद्ध (इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुये.) ॥ १३ ॥ स्वयमेव सप्त तत्वोंके ज्ञाता, निराकुलताके कारणोंसे जिनका अचल सत्व अभ्युदयको प्राप्त था, और इन्द्रसहित लोकान्तिक देव जिनके शुभ सत्वकी प्रशंसा किया करते थे, ऐसे वे महावीरस्वामी थे. ॥ १४ ॥ तथा जन्म, वृद्धावस्था और मरणसे पीड़ित इस असार संसारको अशरण देखके अपने उत्तम विशाल राज्यको त्यागकर वे बुद्धिमान् महावीरस्वामी शान्तिके लिये वनमें चले गये. ॥ १५ ॥ और अशुभ कर्मोंको दमन करनेवाला तथा मोक्षका साधक श्रमणों (जैनमतके मुनियों) के लिङ्ग (चिन्ह) धारण करके, सामायिक कर्मोंको करतेहुये विधिपूर्वक सब व्रतोंको करके, ॥ १६ ॥ सम्यग्ज्ञान, चारित्र, संवर, तप, समाधि, और बल इनसे तो युक्त और मान, मोह, लोभ तथा माया इन चार अशुभ कर्मोंका सर्वथा घात करके, ॥ १७ ॥ पश्चात् स्वयमेव वे प्रभु अनन्त, ज्ञान और दर्शन आदिकी प्राप्तिसे कृतार्थ होनेपरभी इस तीर्थ (जैनधर्म) का उपदेश किया. ॥ १८ ॥ प्रथम प्रमाणनयके अनुसार दो प्रकार, पुनः अनेक प्रकार, वा द्वादशभेदसहित तप आदि धर्म, जो कि

१ यह अर्थ "सत्वहिताऽभ्युद्यताचलितसत्वः" इस पदका कियागया है परन्तु हमारी समझमें इस पदका "जीवोंके हितकेवास्ते अभ्युद्यत और अविचलित सत्त्वको धारण करनेवाले" ऐसा अर्थ प्रतीत होता है. संशोधक.

महान् विषयोंसे युक्त, और अमित आगमोंके प्रमाणोंसे युक्त, तथा संसारसमुद्रसे पार उतारने और संपूर्ण दुःखोंके नाशके लिये समर्थ धर्म है उसका उपदेश दिया. ॥ १९ ॥ तथा यह धर्म अनेक ग्रंथोंके अर्थनिरूपणमें प्रवीण, और अति प्रयत्नशाली निपुण वादियोंसेभी वैसे अखण्डनीय है जैसे अन्य सब तेजोंसे सूर्य्य ॥ २० ॥ ऐसे पूर्वोक्त धर्मके प्रवर्तक परमऋषिस्वरूप मोहादिरहित, तथा सर्वपूज्य वीरभगवान् महावीरस्वामीको मैं ग्रंथकर्ता त्रिकरण (मन वचन तथा काया) की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करके, ॥ २१ ॥ अधिक अर्थसे पूर्ण, और अल्पशब्दयुक्त इस तत्त्वार्थाधिगम नामक लघु ग्रंथको जो कि अर्हत् भगवान्के वचनोंकाही एक देश है, शिष्यजनोंके हितार्थ वर्णन करूंगा. ॥ २२ ॥ और महान् तथा महाविषयोंसे पूर्ण, और अपार, जिन भगवान्के वचनरूपी महासमुद्रका प्रत्यास (संग्रह) करनेको दुर्गमग्रंथभाषीभी कौन समर्थ होसक्ता है? ॥ २३ ॥ जो मनुष्य अति विशाल गम्भीरार्थोंसे पूर्ण जिनवचनरूपी महासमुद्रका संपूर्णरूपसे संग्रह करनेकी इच्छा करता है वह मानो शिरसे पर्वतको तोडना चाहता है, पृथिवीको दोनों भुजाओंसे फेकना चाहता है, भुजाओंसे समुद्रको पार करना चाहता है, और उसी समुद्रका कुशाके अग्रभागसे थाह (पत्ता) लेना चाहता है, आकाशमें उछलके चन्द्रमाको लंघन करना चाहता है, मेरुपर्वतको हाथसे कंपाना चाहता है, गतिमें वायुसेभी आगे जाना चाहता है, अन्तिम महासागरको पान करना चाहता है, और निजमूर्खताके कारण वह खद्योत (जुगनू वा आगियाकीडा) की दीप्तिसे सूर्य्यके तेजकोभी अभिभूत (पराजित) करना चाहता है. ॥ २४।२५।२६ ॥ जिनभगवान्के उपदेशवचनका एकभी पद अभ्यास करनेसे उत्तरोत्तर ज्ञानप्राप्तिद्वारा संसारसागरसे पार उतार देता है, क्योंकि केवल सामायिक मात्र पदसे अनंत सिद्ध होगये, ऐसा श्रवण करनेमें आता है. ॥ २७ ॥ इस हेतु, शास्त्रप्रमाणसे जिन भगवान्का वचन संक्षेपसे तथा विस्तारसे अभ्यस्त होनेसे कल्याण (मोक्ष) दायक है; इस कारण सन्देहरहित होकर जिनवाणीको ग्रहण करना चाहिये, उसके अनुसार धारण करना चाहिये, और दूसरोंको सुनानाभी चाहिये ॥ २८ ॥ हितवाक्यके श्रवणसे संपूर्ण श्रोताओंको सर्वथा धर्मसिद्धि नहीं होती, परन्तु अनुग्रहबुद्धिसे वक्ताको धर्मसिद्धि अवश्य होती है ॥ २९ ॥ इसकारण अपने श्रमका विचार न करके सदा मोक्षमार्गका उपदेश करना चाहिये, क्योंकि हितपदार्थोंका उपदेशदाता अपने तथा जिसको उपदेश देता है, दोनोंके ऊपर मानो अनुग्रह करता है ॥ ३० ॥ इस संपूर्ण संसारमें मोक्षमार्गके सिवाय अन्य कोई हितोपदेश नहीं है, इस हेतुसे सर्व श्रेष्ठ इसी मोक्षमार्गकाही कथन मैं करूंगा ॥ ३१ ॥ इति मोक्षमार्गप्रतिपादक तत्वार्थाधिगमसूत्रसम्बन्धप्रकाशकैकत्रिंशत्कारिकाः समाप्ताः ॥

प्रथम अध्यायः ।

मूलसूत्रम्—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तथा सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्षमार्ग है॥१॥

भाष्यम्—सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमित्येष त्रिविधो मोक्षमार्गः। तं पुरस्ताल्लक्षणतो विधानतश्च विस्तरेणोपदेक्ष्यामः। शास्त्रानुपूर्वीविन्यासार्थं तूद्देशमात्रमिदमुच्यते। एतानि च समस्तानि मोक्षसाधनानि। एकतराभावेऽप्यसाधनानीत्यतस्त्रयाणां ग्रहणम्। एषां च पूर्वलाभे भजनीयमुत्तरं। उत्तरलाभे तु नियतः पूर्वलाभः। तत्र सम्यगिति प्रशंसार्थो निपातः समञ्चतेर्वा। भावः। दर्शनमिति। दृशेरव्यभिचारिणी सर्वेन्द्रियानिन्द्रियार्थप्राप्तिरेतत्सम्यग्दर्शनं। प्रशस्तं दर्शनं सम्यग्दर्शनं। संगतं वा दर्शनं सम्यग्दर्शनम्। एवं ज्ञानचारित्रयोरपि ॥

विशेष व्याख्याः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र (आचरण) यह तीन प्रकारका मोक्षमार्ग है। उस त्रिविध मोक्षमार्गको हम लक्षण तथा परीक्षा भेदनिरूपणपूर्वक आगे विस्तारसे कहैंगे; और यहांपर केवल शास्त्रानुपूर्वी (क्रम) की रचनाके प्रदर्शनार्थ केवल उद्देश[1] मात्र कहते हैं। ये तीनों मिलेहुये, अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तथा सम्यक्चारित्र तीनों मिलकर ही मोक्षमार्गके साधक हैं; क्योंकि तीनोंमेंसे एकके भी न होनेपर एक वा दो मोक्षके साधन नहीं हो सकते, इसलिये भगवान् सूत्रकारने तीनोंका ग्रहण किया है। इनमेंसे पूर्वका लाभ होनेसे उत्तरको प्राप्त करना चाहिये; (अर्थात् सम्यग्दर्शनका लाभ होनेसे उत्तर सम्यग्ज्ञान, तथा सम्यक् चारित्रको निजप्रयत्नसे प्राप्त करना चाहिये,) और उत्तरके लाभमें तो पूर्वका लाभ अवश्यही नियत है, (तात्पर्य्य यह कि सम्यग्ज्ञानका लाभ होनेसे सम्यद्दर्शनका लाभ अवश्य नियत है, तथा सम्यक्चारित्रके लाभसे दर्शन, ज्ञान दोनोंका लाभ नियत है)। सूत्रमें दर्शन आदिका विशेषण जो सम्यक् पद दिया है वह प्रशंसा अर्थका द्योतक वा वाचक निपात है, (अर्थात् प्रशंसित उत्तम दर्शन आदि मोक्ष मार्गके साधन हैं)। अथवा सम् उपसर्गपूर्वक अञ्च धातुसे क्विप्प्रत्यय करनेसे सम्यक् बनता है.[2] (व्यभिचारशून्य) अर्थात् अवश्य संपूर्ण इन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय के द्वारा जो पदार्थोंकी प्राप्ति है उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं; यह दर्शन पद दृश धातुसे ल्युट् (अन) प्रत्यय करनेसे सिद्ध होता है. । प्रशस्त अर्थात् उत्तम (निन्दाव्यभिचार आदिसे शून्य)

---

१. पदार्थोंके केवल नाम मात्रके निरूपणको उद्देश कहते हैं—अनुवादकारः.

२. व्युत्पत्तिपक्षमेंभी सम्यक्पद प्रशंसारूप अर्थका प्रतिपादक होकर दर्शनआदि पदोंका विशेषण होता है इसके लिये प्रकारान्तर कहते हैं। अर्थात् जो पूर्णरूपसे द्रव्यभावोंका प्राप्त हो वह सम्यग्दर्शन आदि। अनु०

जो दर्शन है उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं. । अथवा संगतं (निरन्तर व्यवधानशून्य) जो दर्शन है उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं. । इसी प्रकार ज्ञान तथा चारित्रमेंभी सम्यक् पदकी योजना करनी चाहिये. ॥

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—तत्वार्थको जो श्रद्धान है वह सम्यग्दर्शन है ।

भाष्यम्—तत्त्वानामर्थानां श्रद्धानं तत्त्वेन वार्थानां श्रद्धानं तत्त्वार्थश्रद्धानम् तत् सम्यग्दर्शनम् । तत्त्वेन भावतो निश्चितमित्यर्थः[१] । तत्त्वानि जीवादीनि वक्ष्यन्ते । त एव चार्थास्तेषां श्रद्धानं तेषु प्रत्ययावधारणम् । तदेवं प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमिति ॥

विशेष व्याख्याः—(जिनशास्त्रोंसे प्रतिपाद्य) तत्त्वभूत पदार्थोंका श्रद्धान, अथवा तत्त्वसे जो अर्थोंका श्रद्धान है उसको तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं, और उसी तत्वार्थश्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं, तत्त्वसे अर्थात् भाव (यथार्थरूप) से निश्चियको सम्यग्दर्शन कहते हैं; (तात्पर्य्य यह है कि, जो पदार्थ जैसा है उसीरूपसे उसका जो निश्चय है उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं) जीव आदि पदार्थ तत्त्व कहेजाते हैं जिनको हम आगे निरूपण करेंगे । वेही तत्त्वभूत जीवादि जो पदार्थ हैं, उनका श्रद्धान अर्थात् उनके यथार्थ स्वरूपमें विश्वास करनाही सम्यग्दर्शन है । इस प्रकार प्रशम, अर्थात् रागादिकोंकी उत्कटताका अभाव, संवेग, अर्थात् संसार देह भोग इनका भय, निर्वेद, अर्थात् संसारके पदार्थोंमें घृणापूर्वक वैराग्य, अनुकम्पा (सर्वभूतदया) और शास्त्रबोधित पदार्थआदिमें अस्तित्वकी अभिव्यक्ति (आविर्भाव) रूप जो तत्त्वार्थश्रद्धान है वही सम्यग्दर्शन है. ॥ २ ॥

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

सूत्रार्थ—वह सम्यग्दर्शन निसर्ग तथा अधिगमसे होता है ।

भाष्यम्—तदेतत्सम्यग्दर्शनं द्विविधं भवति । निसर्गसम्यग्दर्शनमधिगमसम्यग्दर्शनं च । निसर्गादधिगमाद्वोत्पद्यत इति द्विहेतुकं द्विविधम् ॥ निसर्गः परिणामः स्वभावः अपरोपदेश इत्यनर्थान्तरम् । ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणो जीव इति वक्ष्यते । तस्यानादौ संसारे परिभ्रमतः कर्मत एव कर्मणः स्वकृतस्य बन्धनिकाचनोदयनिर्जरापेक्षं नारकतिर्यग्योनिमनुष्यामरभवग्रहणेषु विविधं पुण्यपापफलमनुभवतो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वाभाव्यात् तानि तानि परिणामाध्यवसायस्थानान्तराणि गच्छतोऽनादिमिथ्यादृष्टेरपि सतः परिणामविशेषादपूर्वकरणं तादृग्भवति येनास्यानुपदेशात्सम्यग्दर्शनमुत्पद्यत इत्येतन्निसर्गसम्यग्दर्शनम् ॥ अधिगमः अभि-

---

१. जो पदार्थ जैसें अवस्थित है तैसा तिसका होना सो 'तत्व' है, और जो निश्चय किया जावे वह अर्थ है; तत्त्वरूप जो निश्चय सो 'तत्वार्थ' है; तात्पर्य्य कि, जो पदार्थ जिसप्रकार अवस्थित है उसका उसी प्रकारसें ग्रहण-निश्चय-होना सो "तत्वार्थ" है—संशोधकः

गम आगमो निमित्तं श्रवणं शिक्षा उपदेश इत्यनर्थान्तरम् । तदेवं परोपदेशाद्यत्तत्त्वार्थश्रद्धानं भवति तदधिगमसम्यग्दर्शनमिति ॥

विशेष व्याख्याः—यह सम्यग्दर्शन दो प्रकारका होता है, एक तो निसर्गजसम्यग्दर्शन, और दुसरा अधिगमजसम्यग्दर्शन, निसर्ग तथा अधिगम दो हेतुओंसे उत्पन्न होनेसे दो प्रकारका है। निसर्ग, परिणाम, स्वभाव, और दुसरेके उपदेशादिका अभाव, ये सब एकार्थवाचक, अर्थात् पर्य्यायशब्द हैं. ज्ञान तथा दर्शनरूप जो उपयोग है उस उपयोगसे युक्त होना यह जीवका लक्षण है वह आगे कहैंगे. उस जीवके अनादिकाल सिद्ध इस संसारमें कर्मसेही भ्रमण करते हुये निजकृतकर्महीका; नारक तिर्य्यग् मनुष्य तथा देव जन्म ग्रहणोंमें बन्ध निकाचन उदय तथा निर्जराकी अपेक्षा रखनेवाले अनेक प्रकारके पुण्य तथा पाप फलोंको अनुभव करते हुवे, उस जीवके ज्ञान तथा दर्शनरूप उपयोग स्वभावसे उन २ परिणाम अध्यवसाय तथा अन्य २ स्थानादिको प्राप्त होते हुवे अनादि कालसे मिथ्यादृष्टि होनेपरभी परिणामविशेष (कर्मोंका परिपाकतासे भावविशेष) से अपूर्व करण ऐसा होता है कि जिसके द्वारा विना किसीके उपदेश आदिके स्वयं किसी समयमें जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है वही निसर्गजसम्यग्दर्शन है। और अधिगम, अभिगम, आगम, निमित्त, श्रवण, शिक्षा, तथा उपदेश, ये सब समानार्थ कही हैं, इन अधिगम परोपदेशादिकेद्वारा जो तत्वार्थश्रद्धान उत्पन्न होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है ॥ ३ ॥

अत्राह । तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमित्युक्तम् । तत्र किं तत्त्वमिति । अत्रोच्यते ।

अब यहांपर कहतेहैं कि, "तत्त्वरूप अर्थोंका जो श्रद्धान है वह सम्यग्दर्शन है" यहांपर तत्व शब्दसे किस २ का ग्रहण है! इस हेतुसे अग्रिम सूत्रका कथन है. ॥

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा, तथा मोक्ष, ये सात तत्त्व हैं.।

भाष्यम्—जीवा अजीवा आस्रवा बन्धः संवरो निर्जरा मोक्ष इत्येष सप्तविधोऽर्थस्तत्त्वम्। एते वा सप्त पदार्थास्तत्त्वानि । तांल्लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेणोपदेक्ष्यामः ॥

विशेष व्याख्या । जीव मनुष्यादि अजीव आकाश आदि आस्रव, बन्ध, संबर निर्जरा तथा मोक्ष इन सप्तभेदोंसहित जो पदार्थ है वही तत्व है । अथवा ये जीव आदि सात पदार्थ तत्त्व हैं । उन सात प्रकारके तत्त्वरूप पदार्थोंको आगे लक्षण तथा भेद निरूपणपूर्वक विस्तारसे कहैंगे. ॥ ४ ॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—नाम, स्थापना, द्रव्य, तथा भाव इन अनुयोगोंसे जीव आदि सप्त तत्त्वोंका न्यास होता है. ।

एभिर्नामादिभिश्चतुर्भिरनुयोगद्वारैस्तेषां जीवादीनां तत्त्वानां न्यासो भवति । विस्तरेण लक्षणतो विधानतश्चाधिगमार्थं न्यासो निक्षेप इत्यर्थः । तद्यथा । नामजीवः, स्थापनाजीवो, द्रव्यजीवो, भावजीव इति । नाम, संज्ञा, कर्म इत्यनर्थान्तरम् । चेतनावतोऽचेतनस्य वा द्रव्यस्य जीव इति नाम क्रियते स नामजीवः ॥ यः काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु स्थाप्यते जीव इति स स्थापनाजीवो देवताप्रतिकृतिवदिन्द्रो, रुद्रः, स्कन्दो, विष्णुरिति ॥ द्रव्यजीव इति गुणपर्यायवियुक्तः प्रज्ञास्थापितोऽनादिपारिणामिकभावयुक्तो जीव उच्यते । अथवा शून्योऽयं भङ्गः । यस्य ह्यजीवस्य सतो भव्यं जीवत्वं स्यात् स द्रव्यजीवः स्यात् । अनिष्टं चैतत् ॥ भावतो जीवा औपशमिकक्षायिकक्षायौपशमिकौदयिकपारिणामिकभावयुक्ता उपयोगलक्षणाः संसारिणो मुक्ताश्च द्विविधा वक्ष्यन्ते । एवमजीवादिषु सर्वेष्वनुगन्तव्यम् ॥

विशेष व्याख्या—नाम आदि जो चार अनुयोगद्वार हैं उनके द्वारा जीवादि तत्त्वोंका न्यास होताहै, अर्थात् विस्तारसे लक्षण तथा विधान (अर्थात् भेद संख्याआदि) से ज्ञान होनेके लिये जो व्यवहारोपयोग है वही न्यास वा निक्षेप है । (तात्पर्य्य यह कि नामआदि निक्षेपोंसे न्यस्तजीवादि पदार्थोंका वोध पूर्णरूपसे होता है ।) जैसे नामजीव, स्थापनाजीव, द्रव्यजीव, और भावजीव । नाम, संज्ञा और कर्म ये पर्यायवाचक अर्थात् समानार्थक हैं । चेतनावान् अथवा अचेतन द्रव्यकी व्यवहारके लिये जो जीव ऐसा नाम वा संज्ञा की जाती है उसको नामजीव कहते हैं । और काष्ठ, पुस्तक, चित्रकर्म और अक्षनिक्षेप (फांसा आदिके प्रक्षेपने) में जीवरूपसे स्थापना की जाती है उसको स्थापनाजीव कहते हैं । देवताओंकी प्रतिमाके सदृश यह इन्द्र हैं, यह रुद्र हैं, तथा यह विष्णु हैं, इत्यादि रूपसे जो पाषाण वा धातु आदिकी मूर्तियोंमें स्थापना होती है; वही स्थापनाजीव कहा जाता है । गुणपर्य्यायरहित और अनादि पारिणामिक भावोंसे युक्त और प्रज्ञा (केवल बुद्धि मात्र) से स्थापित किया जाता है वह द्रव्यजीव है । अथवा यह भङ्ग शून्य है । जैसे अजीवरूपसे विद्यमान द्रव्यका भव्यरूपसे जीवत्व हो सके वह द्रव्यजीव होगा, किन्तु यह अनिष्ट है । और भावसे औपशमिक, क्षायिक, क्षायौपशमिक, औदयिक, तथा पारिणामिक भावोंसे युक्त और उपयोग लक्षणवाले जीव, संसारी तथा मुक्त ऐसे दो प्रकारके आगे कहे जांयगे. इसी रीतिसे अजीव आदि संपूर्ण पदार्थोंमें नामादि निक्षेप विधिका अनुसरण करना चाहिये.

पर्यायान्तरेणापि नामद्रव्यं, स्थापनाद्रव्यं, द्रव्यद्रव्यं, भावतोद्रव्यमिति । यस्य जीवस्याजीवस्य वा नाम क्रियते द्रव्यमिति तन्नामद्रव्यम् । यत्काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु स्थाप्यते द्रव्यमिति तत् स्थापनाद्रव्यम् । देवताप्रतिकृतिवदिन्द्रो, रुद्रः, स्कन्दो, विष्णुरिति । द्रव्यद्रव्यं नाम गुणपर्यायवियुक्तं प्रज्ञास्थापितं धर्मादीनामन्यतमत् । केचिदप्याहुर्यद्द्रव्यतो द्रव्यं भवति तच्च पुद्गलद्रव्यमेवेति प्रत्येतव्यम् । अणवः स्कन्धाश्च सङ्घातभेदेभ्य उत्पद्यन्त इति वक्ष्यामः । भावतो–द्रव्याणि धर्मादीनि सगुणपर्यायाणि प्राप्तिलक्षणानि वक्ष्यन्ते । आगमतश्च प्राभृतज्ञो द्रव्यमिति भव्यमाह । द्रव्यं च भव्ये । भव्यमिति प्राप्यमाह । भू

प्राप्नावात्मनेपदी। तदेवं प्राप्यन्ते प्राप्नुवन्ति वा द्रव्याणि॥ एवं सर्वेषामनादीनामादिमतां च जीवादीनां भावानां मोक्षान्तानां तत्त्वाधिगमार्थं न्यासः कार्य इति॥

तथा अन्य पर्य्यायसे योंभी कह सकते हैं कि, नामद्रव्य, स्थापनाद्रव्य, द्रव्यद्रव्य, तथा भावसे द्रव्य,। जैसे जीव वा अजीवका द्रव्य ऐसा नाम किया जाता है वह नामद्रव्य है। तथा जो काष्ठ, पुस्तक, चित्रकर्म, तथा अक्षनिक्षेप आदिमें द्रव्यरूपसे स्थापना की जाती है उसको स्थापनाद्रव्य कहते हैं। जैसे देवताओंकी प्रतिमाके तुल्य यह इन्द्रद्रव्य, यह रुद्ररूप तथा यह विष्णुरूप द्रव्य है। और द्रव्यद्रव्य, द्रव्यगुण-पर्य्यायोंसे रहित केवल प्रज्ञामात्रसे स्थापित धर्म आदिमेंसे किसी एकको जानना चाहिये. और कोई ऐसा भी कहते हैं कि, जो द्रव्यनिक्षेपसे द्रव्य होता है वह तो पुद्गलद्रव्यही है ऐसा निश्चय करना चाहिये. अणु और स्कन्ध, संघात भेदसे उत्पन्न होते हैं ऐसा आगे चलके कहैंगे। और भावसे द्रव्य, गुण, तथा पर्य्यायसहित, तथा प्राप्ति आदि लक्षणसंयुक्त धर्म्म आदि आगे निरूपण करैंगे। और आगमसेभी "प्राभृतज्ञ (जीव वा अजीव विधीका ज्ञाता) द्रव्य ही है" यह वचन भी भव्यको कहता है, क्योंकि 'द्रव्यं च भव्ये' 'भव्य अर्थमें द्रव्य यह निपात होता है' यहांपर भव्य यह शब्द भी प्राप्य अर्थको कहता है, क्योंकि आत्मनेपदमें भूधातु प्राप्तिरूप अर्थमें है। इस प्रकार गुण-पर्य्याय आदिसे प्राप्त किये जांय अथवा स्वयं गुणादिको प्राप्त हों वे द्रव्य हैं। इस रीति अनादि वा आदिमान् संपूर्ण जीवआदि मोक्षान्तपदार्थोंके तत्त्वज्ञानार्थ न्यास अवश्य करना चाहिये।

प्रमाणनयैरधिगमः॥ ६॥

सूत्रार्थः—पूर्वकथित जीवादि तत्त्वोंका ज्ञान प्रमाण तथा नयोंके द्वारा होता है।

भाष्यम्—एषां च जीवादीनां तत्त्वानां यथोद्दिष्टानां नामादिभिर्न्यस्तानां प्रमाणनयैर्विस्तराधिगमो भवति॥ तत्र प्रमाणं द्विविधम् परोक्षं प्रत्यक्षं च वक्ष्यते। चतुर्विधमित्येके। नयवादान्तरेण॥ नयाश्च नैगमादयो वक्ष्यन्ते॥

किं चान्यत्।

विशेष व्याख्या—यथा क्रमसे संकीर्तित तथा नाम स्थापना आदि निक्षेप विधिसे उपन्यस्त जीवादि सप्त तत्त्वोंका ज्ञान प्रमाण तथा नयोंसे यथार्थ रूपसे होता है। उसमें परोक्ष तथा प्रत्यक्ष दो प्रकारका प्रमाण कहैंगे। और कोई प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, तथा उपमानरूप, नयवादसे चार प्रकारका प्रमाण कहते हैं। और नैगमसंग्रह आदि नय आगे कहैंगे॥ ६॥

और प्रमाण नयसे अन्य भी जीवादिके ज्ञानका उपाय है वा नहीं। सो अन्य भी है इसलिये आगेका सूत्र कहते हैं।

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—निर्देश (वस्तु नाम संकीर्तन) स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, और विधान (भेदसंख्या) इनके द्वारामी जीव आदि तत्त्वोंका ज्ञान होता है ।

भाष्यम्—एभिश्च निर्देशादिभिः षड्भिरनुयोगद्वारैः सर्वेषां भावानां जीवादीनां तत्त्वानां विकल्पशो विस्तरेणाधिगमो भवति । तद्यथा । निर्देशः । को जीवः । औपशमिकादिभावयुक्तो द्रव्यं जीवः ।

विशेष व्याख्या—ये निर्देश आदि षट् अर्थात् छः जो अनुयोगद्वार हैं उनसे सब भावोंका जीव आदि तत्त्वोंका विकल्प तथा विस्तारसे बोध होता है। जैसे निर्देश-जीव क्या है? उ० औपशमिक तथा क्षायिक आदि जो भाव हैं उनकरके सहित यह द्रव्यही जीव है ॥

सम्यग्दर्शनपरीक्षायाम् । किं सम्यग्दर्शनम् । द्रव्यम् । सम्यग्दृष्टिजीवोऽरूपी नो स्कन्धो नो ग्रामः ॥ स्वामित्वम् । कस्य सम्यग्दर्शनमित्येतदात्मसंयोगेन परसंयोगेनोभयसंयोगेन चेति वाच्यम् । आत्मसंयोगेन जीवस्य सम्यग्दर्शनम् । परसंयोगेन जीवस्याजीवस्य जीवयोरजीवयोर्जीवानामजीवानामिति विकल्पाः । उभयसंयोगेन जीवस्य नोजीवस्य जीवयोरजीवयोर्जीवानामजीवानामिति विकल्पा न सन्ति । शेषाः सन्ति ॥ साधनं । सम्यग्दर्शनं केन भवति । निसर्गादधिगमाद्वा भवतीत्युक्तम् । तत्र निसर्गः पूर्वोक्तः । अधिगमस्तु सम्यग्व्यायामः । उभयमपि तदावरणीयस्य कर्मणः क्षयेणोपशमेन क्षयोपशमाभ्यामिति ॥ अधिकरणं त्रिविधमात्मसन्निधानेन परसन्निधानेनोभयसन्निधानेनेति वाच्यम् । आत्मसन्निधानमभ्यन्तरसन्निधानमित्यर्थः । परसन्निधानं बाह्यसन्निधानमित्यर्थः । उभयसन्निधानं बाह्याभ्यन्तरसन्निधानमित्यर्थः । कस्मिन्सम्यग्दर्शनम् । आत्मसन्निधाने तावत् जीवे सम्यग्दर्शनं, जीवे ज्ञानं, जीवे चारित्रमित्येतदादि । बाह्यसन्निधाने जीवे सम्यग्दर्शनं नोजीवे सम्यग्दर्शनमिति यथोक्ता विकल्पाः । उभयसन्निधाने चाप्यभूताः सद्भूताश्च यथोक्ता भङ्गविकल्पा इति ॥ स्थितिः । सम्यग्दर्शनं कियन्तं कालम् । सम्यग्दृष्टिर्द्विविधा । सादिः सपर्यवसाना सादिरपर्यवसाना च । सादि सपर्यवसानमेव च सम्यग्दर्शनम् । तज्जघन्येनान्तर्मुहूर्तं उत्कृष्टेन षट्षष्टिः सागरोपमानि साधिकानि । सम्यग्दृष्टिः सादिरपर्यवसाना । सयोगः शैलेशीप्राप्तश्च केवली सिद्धश्चेति ॥ विधानं । हेतुत्रैविध्यात् क्षयादित्रिविधं सम्यग्दर्शनम् । तदावरणीयस्य कर्मणो दर्शनमोहस्य च क्षयादिभ्यः । तद्यथा । क्षयसम्यग्दर्शनं, उपशमसम्यग्दर्शनं, क्षयोपशमसम्यग्दर्शनमिति । अत्र चौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकाणां परतः परतो विशुद्धिप्रकर्षः ॥

किं चान्यत् ।

तथा सम्यग्दर्शनकी परीक्षामें सम्यग्दर्शन क्या है ? द्रव्य सम्यग्दर्शन है. सम्यग्दृष्टि जीव रूपरहित नो स्कन्ध तथा नो (ईषत्) ग्राम है ॥ स्वामित्व सम्यग्दर्शन किसका है वा किसको होता है ? इस हेतुसे कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन आत्माके संयोगसे ही आत्मासे भिन्न अन्य पुद्गल धर्म आदिके संयोगसे, तथा आत्मा और अनात्मा उभयके संयोगसे होता है, ऐसा कहना चाहिये । आत्माके संयोगसे जीवको सम्यग्दर्शन होता है, वा जीवका सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शनका स्वामी जीव है । तथा पर (आत्मासे

भिन्न) के संयोगसे जीवको, अजीव (ईषत् जीव) को, दो जीवोंको, दो अजीवोंको, बहुत जीवोंको, वा बहुत अजीवोंको होता है; इत्यादि विकल्प हैं । और उभयके संयोगसे, अर्थात् आत्मा तथा परसंयोगसे जीवको, नो (ईषत्) जीवको, दो जीवोंको, दो अजीवोंको, बहुत जीवोंको, बहुत नो जीवोंको इत्यादि विकल्प नहीं हैं और शेष विकल्प हैं । साधन (जिससे होता है) जैसे सम्यग्दर्शन किससे उत्पन्न होता है । निसर्ग तथा अधिगमसे होता है, यह प्रथम कहचुके हैं । उनमेंसे निसर्गतो कहचुके हैं । और अधिगमतो सम्यग् व्यायाम है, अर्थात् गुरुआदिके समीप रहनेवाले शिष्यकी जो सम्यग्दर्शनके उत्पन्न करनेवाली शुभ क्रिया है वही व्यायाम है । निसर्गज तथा अधिगमज दोनों प्रकारका सम्यग्दर्शन सम्यग्दर्शनावरणीय जो कर्म है उसके क्षयसे उपशमसे अथवा क्षयोपशम दोनोंसे होता है । अधिकरण तीन प्रकारका है, एक आत्माके सन्निधानसे, दूसरा पर अर्थात् अनात्माके सन्निधान (सामीप्य) से, और तीसरा आत्मा और अनात्मा एतदुभय सन्निधानसे ऐसा कहना चाहिये । आत्माका सन्निधान इसका यह तात्पर्य्य है कि आत्माके आभ्यन्तरीय सामीप्य वा सान्निध्यसे, । और पर सन्निधानका तात्पर्य्य आत्माके बाह्य सन्निधानसे है । और उभय सन्निधानका अर्थ बाह्य तथा आभ्यन्तर उभय सन्निधान है । आत्माके सन्निधानका उदाहरण जैसे जीवमें सम्यग्दर्शन है, जीवमें ज्ञान है, तथा जीवमें चारित्र है इत्यादि । और बाह्य सन्निधानका उदाहरण जैसे 'जीवमें सम्यग्दर्शन, नो (ईषत्) जीवमें सम्यग्दर्शन, इत्यादि पूर्वोक्त विकल्प हो सकते हैं । और उभयसन्निधानमें उभयसन्निधानसे अप्राप्य तथा सद्भूत पूर्वोक्त भङ्गविकल्प होते हैं । स्थिति: जीवमें सम्यग्दर्शन कितने कालतक स्थित रहता है । जीवकी सम्यग्दृष्टि दो प्रकारकी होती है, एक तो सादिसान्त अर्थात् आदिसहित और अन्तसहित, और दूसरी सादिअनन्त, अर्थात् उत्पन्न होकर जिस सम्यग्दृष्टिका पुनः अन्त वा नाश नहीं होता । और सम्यग्दर्शन सादि तथा अन्तसहितही होता है । वह सम्यग्दर्शन न्यूनसे न्यून अन्तर्मुहूर्त पर्य्यन्त होता है, अर्थात् कमसे कम अन्तर्मुहूर्त पर्य्यन्त सम्यग्दर्शनकी स्थिति रहती है । और अधिकसे अधिक अर्थात् उत्कृष्टतासे किंचित् अधिक षट्षष्टि छियासठ ६६ सागरोपम कालपर्य्यन्त रहता है । और सम्यग्दृष्टि सादि अनन्त है । जैसे सयोग अर्थात् त्रिविधयोगसहित, शैलेशी प्राप्त केवली और सिद्ध हैं ॥ विधान क्षय आदि हेतुओंके त्रिविध होनेसे तीन प्रकारका है । और यह सम्यग्दर्शनका तीन प्रकारका विधान (भेद) दर्शनावरणीय कर्मके तथा दर्शन मोहके क्षयादि तीनों हेतुओंसे है । जैसे क्षायिक सम्यग्दर्शन, औपशमिक सम्यग्दर्शन, तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन, इन औपशमिक, क्षायोपशमिक, और क्षायिक, सम्यग्दर्शनोंमेंसे पर पर अर्थात् आगे आगेके में विशुद्धि और प्रकर्षता (अधिक उत्तमता) है ॥ ७ ॥

प्रथम कहे हुये इन प्रकारोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारोंसेभी सम्यग्दर्शनादि तथा जीवादि तत्त्वोंका ज्ञान होता है यह जनानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ॥

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—सत्, (अस्तितानिर्देश) संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, तथा अल्पबहुत्व इनसे जीवादि पदार्थ तथा सम्यग्दर्शनादिका अधिगम अर्थात् ज्ञान विस्तारसे होता है।

भाष्यम्—सत्, संख्या, क्षेत्रं, स्पर्शनं, कालः, अन्तरं, भावः, अल्पबहुत्वमित्येतैश्च सद्भूतपदप्ररूपणादिभिरष्टाभिरनुयोगद्वारैः सर्वभावानां विकल्पशो विस्तराधिगमो भवति । कथमिति चेदुच्यते । सत् सम्यग्दर्शनं किमस्ति नास्तीति । अस्तीत्युच्यते । क्वास्तीति चेदुच्यते । अजीवेषु तावन्नास्ति । जीवेषु तु भाज्यम् । तद्यथा । गतीन्द्रियकाययोगकषायवेदलेश्यासम्यक्त्वज्ञानदर्शनचारित्राहारोपयोगेषु त्रयोदशस्वनुयोगद्वारेषु यथासम्भवं सद्भूतप्ररूपणा कर्तव्या ॥ संख्या । कियत्सम्यग्दर्शनं किं संख्येयमसंख्येयमनन्तमिति । उच्यते । असंख्येयानि सम्यग्दर्शनानि, सम्यग्दृष्टयस्त्वनन्ताः ॥ क्षेत्रम् । सम्यग्दर्शनं कियति क्षेत्रे । लोकस्यासंख्येयभागे ॥ स्पर्शनम् । सम्यग्दर्शनेन किं स्पृष्टम् । लोकस्यासंख्येयभागः । सम्यग्दृष्टिना तु सर्वलोक इति ॥ अत्राह सम्यग्दृष्टिसम्यग्दर्शनयोः कः प्रतिविशेष इति । उच्यते । अपायसद्द्रव्यतया सम्यग्दर्शनमपाय आभिनिबोधिकम् । तद्योगात्सम्यग्दर्शनम् । तत्केवलिनो नास्ति । तस्मान्न केवली सम्यग्दर्शनी, सम्यग्दृष्टिस्तु ॥ कालः । सम्यग्दर्शनं कियन्तं कालमित्यत्रोच्यते । तदेकजीवेन नानाजीवैश्च परीक्ष्यम् । तद्यथा । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं उत्कृष्टेन षटषष्टिः सागरोपमानि साधिकानि । नानाजीवान् प्रति सर्वाद्धा ॥ अन्तरम् । सम्यग्दर्शनस्य को विरहकालः । एकं जीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कृष्टेन उपार्धपुद्गलपरिवर्तः । नानाजीवान् प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ भावः । सम्यग्दर्शनमौपशमिकादीनां भावानां कतमो भाव उच्यते । औदयिकपारिणामिकवर्जं त्रिषु भावेषु भवति ॥ अल्पबहुत्वम् । अत्राह सम्यग्दर्शनानां त्रिषु भावेषु वर्तमानानां किं तुल्यसंख्यत्वमाहोस्विदल्पबहुत्वमस्तीति । उच्यते । सर्वस्तोकमौपशमिकम् । ततः क्षायिकमसंख्येयगुणम् । ततोऽपि क्षायोपशमिकमसंख्येयगुणम् । सम्यग्दृष्टयस्त्वनन्तगुणा इति ॥ एवं सर्वभावानां नामादिभिर्न्यासं कृत्वा प्रमाणादिभिरधिगमः कार्यः ॥

उक्तं सम्यग्दर्शनम् । ज्ञानं वक्ष्यामः ।

विशेष व्याख्या—सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, तथा अल्पबहुत्व, ये सदादि पद, अर्थात् विद्यमान अर्थके प्ररूपणाकारक आठ अनुयोगद्वारोंसे सब भाव तथा तत्त्वोंका विकल्प तथा विस्तारपूर्वक ज्ञान होता है। कैसे होता है ऐसा कहो तो कहते हैं ॥ **सत्**—सम्यग्दर्शन है वा नहीं है? है ऐसा कहते हैं। यदि यह प्रश्न करो कि कहां है तो कहते हैं। अजीव पदार्थोंमें तो सम्यग्दर्शन नहीं है। और जीवोंमें विभाग करना चाहिये अर्थात् गति, इन्द्रिय, काय, योग, कषाय, वेद, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तथा आहार, योग, इन अनुयोगों (मार्गणा स्थानों) से यथासंभव सत् आदि प्ररूपणा करनी

चाहिये। जैसे मनुष्य आदि चारों गतियोंमें स्त्री पुरुष दोनोंमें शास्त्रोक्त रीतिसे यथासंभव सम्यग्दर्शन होता है। ऐसेही इन्द्रिय, काय, योगादिसहित जीवोंमें भी आगमके अनुसार सत् आदि प्ररूपणा करनी चाहिये। **संख्या**—सम्यग्दर्शन कितना है? क्या संख्येय है. वा असंख्येय है अथवा अनन्त है? इसका उत्तर कहते हैं. कि सम्यग्दर्शन असंख्येय हैं। और सम्यग्दृष्टि अनन्त हैं। **क्षेत्र**—अर्थात् सम्यग्दर्शन कितने क्षेत्रमें है? उ०—लोकके असंख्येयभागमें सम्यग्दर्शन है। **स्पर्शन**—सम्यग्दर्शननें क्या स्पर्श किया है? उत्तर—लोकका असंख्येयभाग सम्यग्दर्शनसे स्पृष्ट है; अर्थात् लोकके असंख्येयभागको सम्यग्दर्शनने स्पर्श किया है; और सम्यग्दृष्टिने तो संपूर्ण लोकको स्पर्श किया है। यहां प्रश्न करते हैं कि सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्दर्शनमें क्या भेद है? उत्तर कहते हैं— अपाय और सद्द्रव्यरूपसे सम्यग्दर्शन अपाय वा आभिनिबोधिक है। अर्थात् सम्यग्दर्शनका कदाचित् अपाय (नाश) होता है और कदाचित् स्फुरण होता है, उस अपायके योगसे सम्यग्दर्शन है वह केवलीको नहीं होता, अतः केवली सम्यग्दर्शनी नहीं है. और सम्यग्दृष्टि तो है। **काले निरूपणा**—सम्यग्दर्शन कितने कालतक रहता है? इसका उत्तर कहते हैं। वह कालकी स्थिति एक जीव तथा नाना जीवोंसे परीक्षा करने योग्य है। जैसे जघन्यतासे अर्थात् न्यूनसे भी न्यून एक जीवके प्रति अन्तर्मुहूर्त्त पर्य्यन्त सम्यग्दर्शनकी स्थिति है। और उत्कृष्टतासे अर्थात् अधिकसे अधिक कुछ अधिक छियासठि (६६) सागरोपम इसकी स्थिति है। और नाना जीवोंके प्रति संपूर्ण कालमें सम्यग्दर्शनकी स्थिति है, अर्थात् नाना जीवोंमेंसे किसीनकिसी जीवमें सदाकालमें सम्यग्दर्शन बना ही रहता है। **अन्तरकी प्ररूपणा**—सम्यग्दर्शनका अन्तर अर्थात् विरहकाल क्या है? उत्तर—एक जीवके प्रति जघन्यतासे तो अन्तर्मुहूर्त है, और उत्कृष्टतासे उपार्द्धपरिवर्तन काल तक है। और नाना जीवोंके प्रति अन्तर अर्थात् विरह काल है ही नहीं; क्योंकि नाना जीवोमेंसे किसीनकिसी जीवमें सदा सम्यग्दर्शन बना रहैगा। **भाव प्ररूपणा**—औपशमिक आदि भावोंमेंसे सम्यग्दर्शन कौनसा भाव है? उत्तर— औदयिक तथा पारिणामिक भावोंको छोड शेष तीन भावोंमें अर्थात् औपशमिक, क्षायौपशमिक, और क्षायिकभावमें सम्यग्दर्शन होता है। **अल्प वहुत्व प्ररूपणा**—औपशमिक आदि तीन भावोंमें वर्तमान सम्यग्दर्शनोंकी तुल्य संख्या है अथवा अल्पबहुत्व अर्थात् न्यूनाधिक है? उत्तर कहते हैं। सवसे न्यून औपशमिकभाव है। और उससे असंख्येयगुण क्षायिकभाव है। और उससे भी क्षायौपशमिक भाव असंख्येयगुण है। और सम्यग्दृष्टि तो अनन्तगुण है। इसप्रकार सव भावोंका नाम स्थापना आदिसे न्यास करके प्रमाण आदि द्वारा उनका वोध सम्पादन करना चाहिये॥

सम्यग्दर्शनका लक्षण आदि कहचुके। अव आगे ज्ञानके विषयमें कहैंगे॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्य्यय, केवल ये पांच ज्ञानके भेद हैं ।

भाष्यम्—मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मनःपर्यायज्ञानं, केवलज्ञानमित्येतन्मूलविधानतः पञ्चविधं ज्ञानम् । प्रभेदास्त्वस्य पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते ॥

विशेष व्याख्या—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवलज्ञान, मूलभेदसे यह पांच प्रकारका ज्ञान है । इनके भेद प्रभेद आगे वर्णन करेंगे ॥ ९ ॥

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—पूर्वोक्त पंचविधज्ञान दो प्रमाणोंमें विभक्त हैं ।

भाष्यम्—तदेतत्पञ्चविधमपि ज्ञानं द्वे प्रमाणे भवतः परोक्षं प्रत्यक्षं च ॥

विशेष व्याख्या—यह अनन्तर कथित मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्य्यय, तथा केवलज्ञान, दो प्रमाण होते हैं, अर्थात् पूर्वोक्त पंचविधज्ञान ही प्रमाण हैं, और यह प्रमाण परोक्ष, तथा प्रत्यक्ष भेदसे दो प्रकारका है ॥ १० ॥

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—प्रथमके दो ज्ञान परोक्षप्रमाण हैं ।

भाष्यम्—आदौ भवमाद्यम् । आद्ये सूत्रक्रमप्रामाण्यात् प्रथमद्वितीये शास्ति । तदेवमाद्ये मतिज्ञानश्रुतज्ञाने परोक्षं प्रमाणं भवतः । कुतः । निमित्तापेक्षत्वात् । अपायसद्द्रव्यतया मतिज्ञानम् । तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमिति वक्ष्यते ॥ तत्पूर्वकत्वात्परोपदेशजत्वाच्च श्रुतज्ञानम् ॥

विशेष व्याख्या—आदि आरंभमें जो हो उसको आद्य कहते हैं । "आद्ये" यह द्विवचन है. इसलिये 'मति श्रुतावधि' इत्यादि सूत्रक्रमके प्रमाणसे सूत्रकार ही प्रथम तथा द्वितीयज्ञानको परोक्ष रूपसे आज्ञा देते हैं । इस हेतुसे पूर्वोक्त रीतिसे आदिके दो ज्ञान अर्थात् मतिज्ञान, और श्रुतज्ञान ये दोनों परोक्षप्रमाण होते हैं । क्योंकि–निमित्तकी अपेक्षा रखनेसे मति, श्रुतज्ञान, परोक्षप्रमाण ही हैं । अपाय तथा सद्द्रव्यरूपतासे मतिज्ञान संज्ञा है । वह मतिज्ञान इन्द्रिय, तथा अनिन्द्रियमन निमित्तक है अर्थात् नेत्रआदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मन इनसे उत्पन्न होता है । वह आत्मासे भिन्न निमित्तकी अपेक्षा रखता है इसलिये परोक्ष है । और मतिपूर्वक होनेसे तथा परोपदेशजन्य होनेसे श्रुतज्ञान भी परोक्ष ही है ॥ ११ ॥

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—मति और श्रुतसे अन्य तीनों ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण होते हैं ।

भाष्यम्—मतिश्रुताभ्यां यदन्यत् त्रिविधं ज्ञानं तत्प्रत्यक्षं प्रमाणं भवति । कुतः । अतीन्द्रियत्वात् । प्रमीयन्तेऽर्थास्तैरिति प्रमाणानि ॥ अत्राह । इह अवधारितं द्वे एव प्रमाणे

---

१. कहीं. २. "मनःपर्यय" ऐसे प्रथम यकार ह्रस्व है, और इस ग्रन्थमें 'पर्याय' दीर्घही लिखा है ।

प्रत्यक्षपरोक्षे इति । अनुमानोपमानागमार्थापत्तिसम्भवाभावानपि च प्रमाणानीति केचिन्मन्यन्ते । तत्कथमेतदिति । अत्रोच्यते । सर्वाण्येतानि मतिश्रुतयोरन्तर्भूतानीन्द्रियार्थसन्निकर्षनिमित्तत्वात् । किं चान्यत् । अप्रमाणान्येव वा । कुतः । मिथ्यादर्शनपरिग्रहाद्विपरीतोपदेशाच्च । मिथ्यादृष्टेर्हि मतिश्रुतावधयो नियतमज्ञानमेवेति वक्ष्यते । नयवादान्तरेण तु यथा मतिश्रुतविकल्पजानि भवन्ति तथा परस्ताद्वक्ष्यामः ॥

विशेष व्याख्या—मति और श्रुत इन दोनोंसे अन्य अर्थात् भिन्न त्रिविध ज्ञान अर्थात् अवधि, मनःपर्य्यय, तथा केवल ये तीनों प्रत्यक्षप्रमाण हैं । क्योंकि ये तीनों अतीन्द्रिय ज्ञान हैं । जिनके द्वारा संपूर्ण पदार्थ प्रमाविषयीभूत किये जांय, अर्थात् साक्षात् अनुभवगोचर किये जाँय उनको प्रमाण कहते हैं । अब यहांपर कहते हैं कि इस शास्त्रमें अर्थात् जैनशास्त्रमें प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दो ही प्रमाण निश्चित किये हैं । और अनुमान, उपमान, आगम, (शब्द) अर्थापत्ति, संभव, तथा अभाव, इनको भी कोई २ अन्यमतवाले प्रमाणरूपसे मानते हैं, सो यह दोही प्रमाण आपने कैसे माने ? अर्थात् दो प्रमाणोंकी व्यवस्था असंगत प्रतीत होती है । अब यहांपर समाधान कहते हैं । इन्द्रियां तथा पदार्थोंके सन्निकर्षसे उत्पन्न होनेके कारण अनुमान उपमान आदि ये सब प्रमाण मति तथा श्रुत ज्ञान जो कि परोक्ष प्रमाणरूपसे कहे गये हैं उन्हींमें गतार्थ अर्थात् अन्तर्भूत हैं । अथवा अनुमान आदि सब अप्रमाण ही हैं । क्योंकि–इनमें मिथ्यादर्शनका परिग्रह है, और विपरीत उपदेश जन्य हैं । कारण यह कि मिथ्यादृष्टिके मति, श्रुत, और अवधिज्ञान, ये तीनों नियमसे अप्रमाण ही हैं ऐसा आगे कहैंगे । और यद्यपि अप्रमाण होनेसे मतिश्रुतमें अन्तर्भूत हैं यह कहनाभी अयोग्य है तथापि नयोंके वादसे, अर्थात् स्वरचितार्थप्रकाशनरूप जो नयवाद है उसके भेदसे मतिश्रुतके विकल्प- (भेद) जन्य जिसप्रकार प्रमाण होते हैं उसप्रकार आगे निरूपण करैंगे ॥ १२ ॥

अत्राह । उक्तं भवता मत्यादीनि ज्ञानानि उद्दिश्य तानि विधानतो लक्षणतश्च परस्ताद्विस्तरेण वक्ष्याम इति । तदुच्यतामिति । अत्रोच्यते ।

अब यहांपर कहते हैं कि–प्रथम आप (ग्रन्थकार) ने मतिश्रुतादि पांचो ज्ञानोंको कहा और उनको लक्ष्य करके यह भी कहा कि इन (मतिआदि) को भेद तथा लक्षणपूर्वक आगे कहैंगे सो अब वही कहना चाहिये । इसलिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध यह पर्य्यायवाचक शब्द माने गये हैं।

भाष्यम्—मतिज्ञानं, स्मृतिज्ञानं, संज्ञाज्ञानं, चिन्ताज्ञानं, आभिनिबोधिकज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ॥

विशेष व्याख्या—मतिज्ञान, स्मृतिज्ञान, संज्ञाज्ञान, चिन्ताज्ञान, तथा आभिनिबोधिक ज्ञान ये पांचों एकार्थवाचक हैं ॥ १३ ॥

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—यह पूर्वोक्त मति तथा स्मृति आदि शब्द वाच्य मतिज्ञान इन्द्रिय और अनिन्द्रियनिमित्तक है।

भाष्यम्—तदेतन्मतिज्ञानं द्विविधं भवति। इन्द्रियनिमित्तमनिन्द्रियनिमित्तं च। तत्रेन्द्रियनिमित्तं स्पर्शनादीनां पञ्चानां स्पर्शादिषु पञ्चस्वेव स्वविषयेषु। अनिन्द्रियनिमित्तं मनोवृत्तिरोघज्ञानं च ॥

विशेषव्याख्या—मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, और अभिनिवोध इन पांचो पर्य्यायोंसे वाच्य मतिज्ञान दो प्रकार होता है। इन्द्रियनिमित्तक अर्थात् इन्द्रियजन्य, और अनिन्द्रिय निमित्तक अर्थात् मनःकारणक। उनमेंसे इन्द्रियनिमित्तसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान स्पर्शन आदि पांचो इन्द्रियोंके स्पर्श आदि पांचो निजविषयोंमें ही होता है। और अनिन्द्रियनिमित्त अर्थात् मनोजन्य ज्ञान मनकी सब वृत्तियां तथा ओघ अर्थात् अविभक्त सर्वेन्द्रियविषयक ज्ञान है ॥ १४ ॥

अवग्रहेहापायधारणाः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—यह मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अपा (वा) य, तथा धारणा, इन चार भागोंमें विभक्त है।

भाष्यम्—तदेतन्मतिज्ञानमुभयनिमित्तमप्येकशश्चतुर्विधं भवति। तद्यथा। अवग्रह ईहापायो धारणा चेति। तत्राव्यक्तं यथास्वमिन्द्रियैर्विषयाणामालोचनावधारणमवग्रहः। अवग्रहो ग्रहणमालोचनमवधारणमित्यनर्थान्तरम् ॥ अवगृहीते विषयार्थैकदेशाच्छेषानुगमनं निश्चयविशेषजिज्ञासा ईहा। ईहा ऊहा तर्कः परीक्षा विचारणा जिज्ञासेत्यनर्थान्तरम् ॥ अवगृहीते विषये सम्यगसम्यगिति गुणदोषविचारणाध्यवसायापनोदोऽपायः। अपायोऽपगमः अपनोदः अपव्याधः अपेतमपगतमपविद्धमपनुत्तमित्यनर्थान्तरम् ॥ धारणा प्रतिपत्तिर्यथास्वं मत्यवस्थानमवधारणं च। धारणा प्रतिपत्तिरवधारणमवस्थानं निश्चयोऽवगमः अवबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥

विशेषव्याख्या—यह पूर्वोक्त इन्द्रिय और अनिन्द्रिय उभयनिमित्तक मतिज्ञान एक होनेपर भी चार प्रकारका है। अर्थात् अवग्रह, ईहा, अपाय तथा धारणा ये चार, भेद मतिज्ञानके हैं। वहांपर ऐसा कहा है कि निज २ विषयोंके अनुसार इन्द्रियोंकेद्वारा पदार्थोंका आलोचन, वा अवधारण, जो है उसको अवग्रह कहते हैं। अवग्रह, ग्रहण, आलोचन, तथा अवधारण, ये सब शब्द अनर्थान्तर अर्थात् एकार्थवाचक हैं ॥ अवग्रह रूपज्ञानसे गृहीत जो विषय एकदेश है उस पदार्थके एकदेशसे शेषपदार्थके जाननेकेलिये जो अनुगमन है, अर्थात् विशेष निश्चय करनेकी चेष्टाविशेष वा जिज्ञासा है वही ईहा है। ईहा, ऊहा, तर्क, परीक्षा, विचारणा, और जिज्ञासा, ये समानार्थक शब्द हैं। और अवग्रह तथा ईहासे गृहीत विषयमें यह सम्यक् है वा असम्यक्

अर्थात् योग्य है वा अयोग्य इसप्रकार गुणदोषके विचारका जो उद्योग वा अपनोद है उसको अपा (वा)य कहते हैं। अपाय, अपगम, अपनोद, अपव्याध, अपेत, अपगत, अपविद्ध, और अपनुत्त, ये एकार्थवाचक हैं। पदार्थके स्वरूपके अनुसार जो उसकी प्रतिपत्ति, अर्थात् यथार्थबोध, वा बुद्धिकी पदार्थमें युक्त चिरकालार्थ स्थिति, अथवा अवधारणा है उसको धारणा कहते हैं। धारणा, प्रतिपत्ति, अवधारण, अवस्थान, निश्चय, अवगम, और अवबोध, ये शब्द एकार्थवाचक हैं ॥ १५ ॥

बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनसे इतर अर्थात् अल्प, अल्पविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त, अध्रुव ये १२ भेद अवग्रहादिमें होते हैं।

भाष्यम्—अवग्रहादयश्चत्वारो मतिज्ञानविभागा एषां बह्वादीनामर्थानां सेतराणां भवन्त्येकशः। सेतराणामिति सप्रतिपक्षाणामित्यर्थः। बह्ववगृह्णाति अल्पमवगृह्णाति बहुविधमवगृह्णाति एकविधमवगृह्णाति। क्षिप्रमवगृह्णाति चिरेणावगृह्णाति। अनिश्रितमवगृह्णाति निश्रितमवगृह्णाति। अनुक्तमवगृह्णाति उक्तमवगृह्णाति। ध्रुवमवह्णाति अध्रुवमवगृह्णाति। इत्येवमीहादीनामपि विद्यात् ॥

विशेषव्याख्या—मतिज्ञानके जो अवग्रह, ईहा, आदि चार विभाग हैं उन प्रत्येकमें बहु, बहुविध, तथा इनके विरुद्ध अल्प एकविध आदि १२ भेद होते हैं। यहां "सेतराणाम्" इससे बहुआदिके प्रतिपक्ष (विरुद्ध) अल्प, तथा एकविध, इत्यादिसे तात्पर्य्य है। जैसे बहुत ग्रहण करता है, अल्पग्रहण करता है। बहुविध (बहुप्रकार) से ग्रहण करता है, एकविध ग्रहण करता है। क्षिप्र अर्थात् शीघ्र ग्रहण करता है, चिरकालसे ग्रहण करता है। अनिश्चित (चिन्हादिसे अज्ञात) ही ग्रहण करता (जानता) है. निश्चित (लिङ्ग वा चिन्हसे ज्ञात) को ग्रहण करता है। अनुक्त विना कहा हुआ ही ग्रहण करता है, उक्त कहा-हुआ ग्रहण करता है। ध्रुव ग्रहण करता है, तथा अध्रुव ग्रहण करता है। इसीप्रकार ईहादिके विषयमें भी बहु, बहुविध, तथा इनके विरुद्ध अल्प, एकविध आदिकी योजना करनी चाहिये। अर्थात् बहुईहा अल्पईहा इत्यादि जानना चाहिये ॥ १६ ॥

अर्थस्य ॥ १७ ॥

भाष्यम्—अवग्रहादयो मतिज्ञानविकल्पा अर्थस्य भवन्ति ॥

विशेषव्याख्या—अवग्रह आदि जो मतिज्ञानके विकल्प (भेद) हैं, सो अर्थके ही होते हैं ॥ १७ ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—व्यञ्जनका तो अवग्रह ही होता है।

भाष्यम्—व्यञ्जनस्यावग्रह एव भवति नेहादयः। एवं द्विविधोऽवग्रहो व्यञ्जनस्यार्थस्य च। ईहादयस्त्वर्थस्यैव ॥

विशेषव्याख्या—व्यञ्जन (अव्यक्तशब्द आदि) का अवग्रह ही होता है न कि ईहा आदि। इसप्रकार अवग्रह दो प्रकारका होता है. एक अर्थाऽवग्रह और दूसरा व्यञ्जनाऽवग्रह और ईहा आदि तो अर्थके ही होते हैं ॥ १८ ॥

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—नेत्रइन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय (मन) से व्यञ्जनका अवग्रह नहीं होता।

भाष्यम्—चक्षुषा नोइन्द्रियेण च व्यञ्जनावग्रहो न भवति। चतुर्भिरिन्द्रियैः शेषैर्भवतीत्यर्थः। एवमेतन्मतिज्ञानं द्विविधं चतुर्विधं अष्टाविंशतिविधं अष्टषष्ठ्युत्तरशतविधं षट्त्रिंशत्त्रिशतविधं च भवति ॥

विशेषव्याख्या—चक्षुष नेत्रइन्द्रिय और अनिन्द्रिय अर्थात् ईषत् इन्द्रिय मन, इन दोनोंसे व्यञ्जनका अवग्रहरूप ज्ञान नहीं होता है किन्तु शेष स्पर्शन आदि चार इन्द्रियोंसे होता है। इस रीतिसे इन्द्रिय और अनिन्द्रिय निमित्तसे मतिज्ञान दो प्रकारका होता है, अवग्रह तथा ईहा अपाय और धारणा इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है। तथा स्पर्शन (त्वक्) आदि पांचइन्द्रियां और मन इन छहोंके प्रत्येकके अवग्रह आदि चार २ भेद मिलके २४ और नेत्र तथा मनको छोडके शेष स्पर्शन आदि चार इन्द्रियोंका चार प्रकारका व्यञ्जनाऽवग्रह सब मिलकर २८ प्रकारका भी मतिज्ञान होता है। और इन्हीं अट्ठावीस २८ भेदोंको वहु, वहुविध आदि छह २ भेदोंसे एकसोअड्सठ १६८ भेद मतिज्ञानके होते हैं। तथा इन्हीं पूर्वोक्त अट्ठावीस २८ भेदोंमेंसे प्रत्येकको वहु, वहुविध, तथा इनके इतर अल्प, एकविध आदिसे वारह भेद करनेसे तीनसोछत्तीस ३३६ भेद मतिज्ञानके होते हैं ॥ १९ ॥

अत्राह। गृहीमस्तावन्मतिज्ञानम्। अथ श्रुतज्ञानं किमिति। अत्रोच्यते ॥

अव कहते हैं कि मतिज्ञानको पूर्वोक्त भेदोंसहित ग्रहण करते हैं, अव क्रमप्राप्त श्रुतज्ञान क्या है, सो कहिये ? इसलिये श्रुतज्ञानके भेद प्रदर्शन करनेकेलिये अग्रिम सूत्र कहते हैं।

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

सूत्रार्थ—श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, और उसके दो अनेक तथा द्वादश भेद हैं।

भाष्यम्—श्रुतज्ञानं मतिज्ञानपूर्वकं भवति। श्रुतमाप्तवचनमागम उपदेश ऐतिह्यमाम्नायः प्रवचनं जिनवचनमित्यनर्थान्तरम्। तद्द्विविधमङ्गवाह्यमङ्गप्रविष्टं च। तत्पुनरनेकविधं द्वादशविधं च यथासङ्ख्यम्। अङ्गवाह्यमनेकविधम्। तद्यथा। सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवो वन्दनं प्रतिक्रमणं कायव्युत्सर्गः प्रत्याख्यानं दशवैकालिकं उत्तराध्यायाः दशाः कल्पव्यवहारौ निशीथमृषिभाषितान्येवमादि ॥ अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधम्। तद्यथा। आचारः सूत्रकृतं स्थानं समवायः व्याख्याप्रज्ञप्तिः ज्ञातधर्मकथा उपासकाध्ययनदशाः अन्तकृद्दशाः अनुत्तरौपपातिक-

दशाः प्रश्नव्याकरणं विपाकसूत्रं दृष्टिपात इति ॥ अत्राह । मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः कः प्रतिविशेष इति । अत्रोच्यते । उत्पन्नाविनष्टार्थग्राहकं साम्प्रतकालविषयं मतिज्ञानम् । श्रुतज्ञानं तु त्रिकालविषयं उत्पन्नविनष्टानुत्पन्नार्थग्राहकम् ॥ अत्राह । गृह्णीमो मतिश्रुतयोर्नानात्वम् । अथ श्रुतज्ञानस्य द्विविधमनेकद्वादशविधमिति किं कृतः प्रतिविशेष इति । अत्रोच्यते । वक्तृविशेषाद्वैविध्यम् । यद्भगवद्भिः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः परमर्षिभिरर्हद्भिस्तत्स्वाभाव्यात्परमशुभस्य च प्रवचनप्रतिष्ठापनफलस्य तीर्थकरनामकर्मणोऽनुभावादुक्तं भगवच्छिष्यैरतिशयवद्भिरुत्तमातिशयवाग्बुद्धिसंपन्नैर्गणधरैर्दृब्धं तदङ्गप्रविष्टम् । गणधरानन्तर्यादिभिस्त्वत्यन्तविशुद्धागमैः परमप्रकृष्टवाङ्मतिशक्तिभिराचार्यैः कालसंहननायुर्दोषादल्पशक्तीनां शिष्याणामनुग्रहाय यत्प्रोक्तं तदङ्गबाह्यमिति ॥ सर्वज्ञप्रणीतत्वादानन्त्याच्च ज्ञेयस्य श्रुतज्ञानं मतिज्ञानान्महाविषयम् । तस्य च महाविषयत्वात्तांस्तानर्थानधिकृत्य प्रकरणसमाप्त्यपेक्षमङ्गोपाङ्गनानात्वम् । किं चान्यत् । सुखग्रहणधारणविज्ञानापोहप्रयोगार्थं च । अन्यथा ह्यनिबद्धमङ्गोपाङ्गशः समुद्रप्रतरणवद्दुरध्यवसेयं स्यात् । एतेन पूर्वाणिवस्तूनि प्राभृतानि प्राभृतप्राभृतानि अध्ययनान्युद्देशाश्च व्याख्याताः ॥अत्राह । मतिश्रुतयोस्तुल्यविषयत्वं वक्ष्यति । द्रव्येष्वसर्वपर्यायेष्विति । तस्मादेकत्वमेवास्त्विति । अत्रोच्यते । उक्तमेतत् साम्प्रतकालविषयं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं तु त्रिकालविषयं विशुद्धतरं चेति । किं चान्यत् । मतिज्ञानमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमात्मनो ज्ञस्वाभाव्यात्पारिणामिकम् । श्रुतज्ञानं तु तत्पूर्वकमाप्तोपदेशाद्भवतीति ॥

विशेषव्याख्या—मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है । श्रुत, आप्तवचन, आगम, उपदेश, ऐतिह्य, आम्नाय, प्रवचन, तथा जिनवचन ये सब अनर्थान्तर अर्थात् समानार्थवाचक शब्द हैं । पुनः वह श्रुत दो प्रकारका है । एक अङ्गबाह्य, और दूसरा अङ्गप्रविष्ट और दोनो यथा संख्यासे अर्थात् अङ्गबाह्य अनेक प्रकारका है और अङ्गप्रविष्ट द्वादश १२ प्रकारका है । इनमें अनेकभेदसहित अङ्गबाह्यके कुछ उदाहरण. जैसेः—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, २४ स्तोत्र वन्दन, प्रतिक्रमण, कायव्युत्सर्ग, अर्थात् किये हुए पापकी शुद्धता जहां शरीरके त्यागसे वर्णन की गई है, प्रत्याख्यान दशवैकालिक, उत्तरअध्याय, दशा, कल्प तथा व्यवहार, और निशीथ, इत्यादि ऋषियोंसे भाषित अनेक प्रकारका अङ्गविध है । अङ्गप्रविष्ट बारह प्रकारका है जैसेः—आचार १ सूत्रकृत २ स्थान ३ समवाय ४ व्याख्याप्रज्ञप्ति ५ ज्ञातृधर्मकथा ६ उपासकाध्ययनदशा, ७ अन्तकृद्दशा ८ अनुत्तर औपपातिक (उपपात सम्बधिनी) दशा ९ प्रश्नव्याकरण १० विपाकसूत्र ११ तथा दृष्टिपात १२ । यहांपर प्रश्न करते हैं कि मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान क्या भेद है? उत्तर देते हैं कि उत्पन्न होकर जो नष्ट नहीं हुआ है ऐसे पदार्थका वर्तमानकालमें ग्राहक तो मतिज्ञान है । और श्रुतज्ञान तो त्रिकालविषयक है, जो पदार्थ उत्पन्न हुवा है, अथवा उत्पन्न होकर नष्ट हो गया है, वा उत्पन्न ही नहीं हुआ, किन्तु भविष्यमें उत्पन्न होनेवाला है वा नित्य है उन सबका ग्राहक श्रुतज्ञान है । यह भेद इन दोनोंमें है । अब पुनः यहांपर कहते हैं कि

मति तथा श्रुतज्ञानका नानात्व (भेद) तो अङ्गीकार करते हैं, किन्तु श्रुतज्ञान द्विविध (दो भेद) अनेकविध, तथा द्वादशविध अर्थात् १२ भेद सहित है, इस विशेषता क्या कारण है, यह परस्पर भेद किसका किया है? अब इसका उत्तर देते है कि वक्ताके भेदसे प्रथम दो भेद माने गये हैं, अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट ये भेद वक्ताओंके भिन्न २ होनेसे माने गये हैं । जो कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा परमऋषि स्वरूप भगवान् अर्हतोंने परमशुभ, तथा प्रवचन प्रतिष्ठापन फलदायक तीर्थंकर नाम कर्म्मके प्रभावसे तादृश स्वभाव होनेके कारणसे कहा हैं; उसीको अतिशय अर्थात् साधारण जनोंसे विशेपता युक्त, और उत्तम तथा विशेषवाणी तथा बुद्धि ज्ञान आदि संपन्न भगवान् शिष्य गणधरोंने जो कुछ कहा है वह अङ्ग प्रविष्ट है । और गणधरोंके अनन्तर होनेवाले अत्यन्त विशुद्ध आगमोंके ज्ञाता तथा परमोत्तम वाक् बुद्धिआदिकी शक्तिसम्पन्न आचार्य्योंने कालसंहनन तथा अल्पायु आदिके दोपोंसे अल्पशक्तिवाले शिष्योंके ऊपर अनुग्रहार्थ जो ग्रन्थ निर्म्माण किये हैं वे सब अङ्गबाह्य हैं । सर्वज्ञसे रचित होनेके कारण तथा ज्ञेयवस्तुके अनन्त होनेसे मतिज्ञानकी अपेक्षा श्रुतज्ञान् महान् विपयोंसे संयुक्त है । अतएव श्रुतज्ञानके महाविषय होनेके कारण उन २ जीवादि पदार्थोंका अधिकारकरके प्रकरणोंकी समाप्तिकी अपेक्षा संयुक्त अङ्ग तथा उपाङ्गोंका नानात्व अर्थात् अनेक भेदत्व हैं । और भी, सुखपूर्वक ग्रहण, धारण, तथा विज्ञानके निश्चय प्रयोगार्थ भी श्रुतज्ञानका नानात्व (अनेक भेदत्व) है और यदि ऐसा न हो अर्थात् प्रत्येक विपय निज २ प्रकरणमें निबद्ध न हो तो समुद्रके तरनेके सदृश उन २ पदार्थोंका ज्ञान दुःसाध्य हो जाय । और इस सुखपूर्वकग्रहणआदि रूप अङ्ग तथा उपाङ्गोंके भेदस्वरूप प्रयोजनसे पूर्वकालिकवस्तु, प्राप्तव्य जीवादि द्रव्य, तथा जीवादि द्वारा ज्ञेय विद्या आदि अध्ययन और उनके उद्देशोंका भी निरूपण हो गया, अर्थात् ज्ञेयकी सुगमताकेलिये ही जीवसे ज्ञेय जीवसम्बन्धी ज्ञान, तथा जीवसे बोध्य अचेतन पदार्थोंका ज्ञान, यह सब नाना भेद सहित श्रुतज्ञान द्वारा वर्णन किया गया है । अब यहांपर कहते हैं कि मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानकी तुल्यता "द्रव्येष्वसर्वपर्य्यायेषु" (तत्वार्थसूत्र, अध्याय १ सूत्र २७) में कहेंगे अर्थात् असर्वपर्य्यायों (कतिपय पर्य्यायों) में संपूर्ण द्रव्योंमें मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानका विपय निबन्ध हैं, तात्पर्य्य यह कि इस सूत्रद्वारा यह कहा गया है कि संपूर्ण द्रव्योंके कुछ पर्य्याय मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानके विपय हैं, इससे दोनोंकी एकता हो गई । अब उत्तर कहते हैं कि यह विपय प्रथम ही कह चुके हैं कि मतिज्ञान तो वर्तमानकालविपयक है, और श्रुतज्ञान त्रिकालविपयक है, तथा मतिज्ञानसे अधिक विशुद्ध और महाविपययुक्त है अर्थात् मतिज्ञानसे तो केवल वर्तमानकालके ही पदार्थ जाने जाते हैं, और श्रुतज्ञानसे तीनों कालके पदार्थ जाने जाते हैं । और दूसरी बात यह भी है कि

मतिज्ञान तो इन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय (मन) को निमित्त मानकर आत्माके ज्ञस्वभाव (जाननेके स्वभाव) से उत्पन्न होता है अतएव पारिणामिक है; और श्रुतज्ञान तो मतिपूर्वक है और आप्तके उपदेशसे उत्पन्न होता है; इस हेतुसे भी दोनोंका भेद है ॥ २० ॥

अत्राह । उक्तं श्रुतज्ञानम् । अथावधिज्ञानं किमिति । अत्रोच्यते ॥

अब कहते हैं श्रुतज्ञान तो कह चुके उसके अनन्तर जो अवधिज्ञानका उद्देश (नाम संकीर्तन) किया है उसका क्या स्वरूप है ? इसलिये अग्रिम सूत्र कहते हैं ।

द्विविधोऽवधिः ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—अवधिज्ञान दो प्रकारका है ।

भाष्यम्—भवप्रत्ययः क्षयोपशमनिमित्तश्च ॥

विशेषव्याख्या—भवप्रत्यय अर्थात् केवल जन्ममात्रके कारणसे उत्पन्न होनेवाला तथा क्षयोपशमनिमित्तसे उत्पन्न होनेवाला, इस रीतिसे क्षयोपशमनिमित्तक तथा भवप्रत्यय भेदसे अवधिज्ञान दो प्रकारका है ॥ २१ ॥

तत्र—

उनमें—

भवप्रत्ययो नारकदेवानाम् ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—नारकी जीव तथा देवोंको अवधिज्ञान केवल जन्म निमित्तसे होता है ।

भाष्यम्—नारकाणां देवानां च यथास्वं भवप्रत्ययमवधिज्ञानं भवति । भवप्रत्ययं भवहेतुकं भवनिमित्तमित्यर्थः । तेषां हि भवोत्पत्तिरेव तस्य हेतुर्भवति पक्षिणामाकाशगमनवत् न शिक्षा न तप इति ॥

विशेष व्याख्या—नरकमें उत्पन्न होनेवाले जीव तथा देव इनको अवधिज्ञान भवप्रत्यय होता है । अर्थात् इनके अवधिज्ञान होनेमें नरकयोनि तथा देवयोनिमें उत्पत्ति होना ही एक हेतु है; जैसे पक्षियोंमें जन्म होना आकाशगमनमें हेतु है । अर्थात् जैसे पक्षियोंका जन्म ही आकाशमें गतिका कारण है न कि शिक्षा वा तप आदि, ऐसे ही नारकी तथा देवोंमें उत्पत्तिमात्रसे अवधिज्ञान प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

यथोक्तनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—क्षयोपशमनिमित्तक तथा षट्भेद सहित अवधिज्ञानशेष अर्थात् तिर्य्यग् योनि और मनुष्य योनियोंमें होता है ।

भाष्यम्—यथोक्तनिमित्तः क्षयोपशमनिमित्त इत्यर्थः । तदेतदवधिज्ञानं क्षयोपशमनिमित्तं षड्विधं भवति शेषाणाम् । शेषाणामिति नारकदेवेभ्यः शेषाणाम् तिर्यग्योनिजानां मनुष्याणां

च। अवधिज्ञानावरणीयस्य कर्मणः क्षयोपशमाभ्यां भवति षड्विधम्। तद्यथा अनानुगामिकं आनुगामिकं हीयमानकं वर्धमानकं अनवस्थितं अवस्थितमिति। तत्रानानुगामिकं यत्र क्षेत्रे स्थितस्योत्पन्नं ततः प्रच्युतस्य प्रतिपतति प्रश्नादेशपुरुषज्ञानवत्॥ आनुगामिकं यत्र क्वचिदुत्पन्नं क्षेत्रान्तरगतस्यापि न प्रतिपतति भास्करप्रकाशवत् घटरक्तभाववच्च॥ हीयमानकं असंख्येयेषु द्वीपेषु समुद्रेषु पृथिवीषु विमानेषु तिर्यगूर्ध्वमधो यदुत्पन्नं क्रमशः संक्षिप्यमाणं प्रतिपतति आ अङ्गुलासंख्येयभागात् प्रतिपतत्येव वा परिच्छिन्नेन्धनोपादानसंतत्यग्निशिखावत्॥ वर्धमानकं यदङ्गुलस्यासंख्येयभागादिषूत्पन्नं वर्धते आ सर्वलोकात् अधरोत्तरारणिनिर्मथनोत्पन्नोपात्तशुष्कोपचीयमानाधीयमानेन्धनराश्यग्निवत्॥ अनवस्थितं हीयते वर्धते च वर्धते हीयते च प्रतिपतति चोत्पद्यते चेति पुनः पुनरूर्मिवत्॥ अवस्थितं यावति क्षेत्रे उत्पन्नं भवति ततो न प्रतिपतत्या केवलप्राप्तेः आ भवक्षयाद्वा जात्यन्तरस्थायि वा भवति लिङ्गवत्॥

विशेष व्याख्या—पूर्व प्रसंगमें जो क्षयोपशमनिमित्त कहा है उस यथोक्त निमित्तसे उत्पन्न तथा आनुगामिक आदि भेद सहित अवधिज्ञान देव तथा नारकियोंसे शेष जो तिर्यग्योनिज और मनुष्य हैं, उनको होता है। अवधिज्ञानावरणीयकर्मके क्षय तथा उपशमसे जो अवधिज्ञान होता है, वह षड्विकल्प है, अर्थात् उसके छह भेद हैं। जैसे १ अनानुगामिक, २ आनुगामिक, ३ हीयमान, ४ वर्द्धमानक, ५ अनवस्थित और अवस्थित। इनमेंसे अनानुगामिक अवधिज्ञान वह है, कि जो जिसक्षेत्रमें स्थित पुरुषको उत्पन्न होता है, उस क्षेत्रसे जब वह पुरुष च्युत होता है अर्थात् गिरता है, तब उसका वह अवधिज्ञान भी गिर जाता है, उसके साथ ऐसा नहीं जाता जैसे प्रधान पुरुषनिष्ठज्ञान. अर्थात् जैसे निमित्तज्ञानी किसी स्थानविशेषमें ही किसी पुरुषमें ज्ञान प्राप्त कर सक्ता है न कि सर्वत्र और सो भी पृष्ट अर्थको ही कह सक्ता है। और आनुगामिक व अनुगामी अवधिज्ञान वह है, कि जो किसी क्षेत्रमें किसी पुरुषको उत्पन्न हुआ उससे अन्यक्षेत्रमें जानेपर भी उस पुरुषसे ऐसे पतित नहीं होता जैसे सूर्यका प्रकाश घटादिका रक्तभाव। हीयमान अवधिज्ञान वह है, जो कि असंख्यातद्वीप समुद्रोंमें, पृथ्वीके प्रदेशोंमें, विमानोंमें तथा तिर्यक् (तिरछे) ऊर्द्ध व अधोभागमें उत्पन्न हुआ है, वह क्रमसे संक्षिप्त होता हुआ यहां तक गिर जाता है वा न्यून हो जाता है, जबतक अंगुलके असंखेय भागको नहीं प्राप्त होता अथवा सर्वथा गिर ही जाता है, जैसे परमित उपादान कारण (ईंधन) वाले अग्निकी शिखा। वर्द्धमानक अवधिज्ञान वह है, जो कि अंगुलके असंखेय भाग आदिमें उत्पन्न होकर सम्पूर्ण लोकपर्यन्त ऐसे वढता है, जैसे ऊपर नीचेके अरणिके[1] मंथनसे उत्पन्न तथा शुष्क ईंधनकी राशिपर फेंकाहुआ वर्द्धमान अग्नि। अनवस्थित अवधिज्ञान वह है, जो कि तरंगके समान जहांतक उसको वढना चाहिये वहां तक पुनः २ वढता है और छोटा भी यहांतक होता है कि जहांतक उसको छोटा होना चाहिये. इसी

1 काष्ठरचित यंत्रविशेष.

रीतिसे वह बार २ बढता तथा न्यून होता और गिरता तथा उत्पन्न होता रहता है. एकरूपमें अवस्थित नहीं रहता किन्तु न्यूनाधिकभावमें सदा अनवस्थितरूप रहता है। और अवस्थित अवधिज्ञान वह है, कि जो जिस क्षेत्रमें जितने आकारमें उत्पन्न हुआ हो, उस क्षेत्रसे केवलज्ञानकी प्राप्तिपर्यन्त नहीं गिरता अथवा भवके नाश तक नहीं गिरता, वा लिङ्गके समान वह अन्यजातिमेंभी स्थिर रहता है ॥ २३ ॥

उक्तमवधिज्ञानम् । मनःपर्यायज्ञानं वक्ष्यामः ।

अवधिज्ञान कह चुके अव मनःपर्यायज्ञानका निरूपण करेंगे ।

ऋजुविपुलमती मनःपर्यायः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—मनःपर्यायज्ञानके ऋजुमति तथा विपुलमति ये दो भेद हैं ।

भाष्यम्—मनःपर्यायज्ञानं द्विविधम् । ऋजुमतिमनःपर्यायज्ञानं विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानं च ॥

विशेष व्याख्या—ऋजुमतिमनःपर्याय तथा विपुलमतिमनःपर्याय इन दो भेदोंसे मनःपर्यायज्ञानके दो भेद हैं । ऋजु अर्थात् मनवचनकायकी सरलतासे मनमें स्थित रूपीपदार्थ तथा परके मनमें स्थित पदार्थ जिससे जाने जाते हैं वह **ऋजुमतिमनःपर्याय** है. और सरल तथा वक्ररूप दूसरेके मनमें स्थित रूपीपदार्थ जिससे जाने जाते हैं, वह **विपुलमतिमनःपर्याय** है ॥ २४ ॥

अत्राह । कोऽनयोः प्रतिविशेष इति । अत्रोच्यते ।

अव यहांपर कहते हैं कि ऋजुमतिमनःपर्यायज्ञान तथा विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानमें क्या भेद है ? यहां कहते हैं ।

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—विशुद्धि तथा अप्रतिपात इन दोनों हेतुओंसे ऋजुमति तथा विपुलमति मनःपर्यायज्ञानमें विशेष (भेद) है ।

भाष्यम्—विशुद्धिकृतश्चाप्रतिपातकृतश्चानयोः प्रतिविशेषः । तद्यथा । ऋजुमतिमनःपर्यायाद्विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानं विशुद्धतरम् । किं चान्यत् । ऋजुमतिमनःपर्यायज्ञानं प्रतिपतत्यपि भूयो विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानं तु न प्रतिपततीति ॥

विशेष व्याख्या—विशुद्धिकृत तथा अप्रतिपातकृत इन दोनोंमें विशेषता है । जैसे ऋजुमतिमनःपर्यायज्ञानकी अपेक्षासे विपुलमतिमनःपर्याय विशुद्धतर है; अर्थात् अधिक विशुद्ध है । और भी ऋजुमतिमनःपर्यायवाला गिर जाता है और विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानवाला पुनः नहीं गिरता ॥ २५ ॥

अत्राह । अथावधिमनःपर्यायज्ञानयोः कः प्रतिविशेष इति ।

अव कहते हैं कि; अवधिज्ञान तथा मनःपर्यायज्ञानमें क्या भेद है ?

अत्रोच्यते।

यहां सूत्र कहते हैं।

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्याययोः॥ २६॥

सूत्रार्थः—विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी तथा विषयकृत अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञानमें विशेषता है।

भाष्यम्—विशुद्धिकृतः क्षेत्रकृतः स्वामिकृतो विषयकृतश्चानयोर्विशेषो भवत्यवधिमनःपर्याययज्ञानयोः। तद्यथा। अवधिज्ञानान्मनःपर्यायज्ञानं विशुद्धतरम्। यावन्ति हि रूपाणि द्रव्याण्यवधिज्ञानी जानीते तानि मनःपर्यायज्ञानी विशुद्धतराणि मनोगतानि जानीते। किं चान्यत्। क्षेत्रकृतश्चानयोः प्रतिविशेषः। अवधिज्ञानमङ्गुलस्यासंख्येयभागादिषूत्पन्नं भवत्यासर्वलोकात्। मनःपर्यायज्ञानं तु मनुष्यक्षेत्र एव भवति नान्यक्षेत्र इति॥ किं चान्यत्। स्वामिकृतश्चानयोः प्रतिविशेषः। अवधिज्ञानं संयतस्य असंयतस्य वा सर्वगतिषु भवति। मनःपर्यायज्ञानं तु मनुष्यसंयतस्यैव भवति नान्यस्य॥ किं चान्यत् विषयकृतश्चानयोः प्रतिविशेषः। रूपिद्रव्येष्वसर्वपर्यायेष्ववधेर्विषयनिबन्धो भवति। तदनन्तभागे मनःपर्यायस्येति॥

विशेषव्याख्या—विशुद्धिकृत अर्थात् अधिक शुद्धिद्वारा क्षेत्रकृत अर्थात् उत्पत्तिस्थानद्वारा स्वामिद्वारा और विषयद्वारा अवधिज्ञान तथा मनःपर्यायज्ञानमें भेद है। जैसे अवधिज्ञानकी अपेक्षासे मनःपर्यायज्ञान अधिकतर विशुद्ध है, जितने रूप वा रूपी द्रव्योंको अवधिज्ञानवाला जानता हैं, उनको मनःपर्यायज्ञानी अधिकतर शुद्धतासे मनोगत होनेपर भी अधिकतर शुद्धतासे जान लेता है। और क्षेत्रकृति भी इन दोनों अर्थात् अवधि तथा मनःपर्याययज्ञानमें विशेषता है। जैसे अवधिज्ञान तो अंगुलके असंख्येय भागादि क्षेत्रोंमें उत्पन्न होकर सम्पूर्ण लोकपर्यन्तमें हो सक्ता है और मनःपर्यायज्ञान मनुष्य क्षेत्रमें ही उत्पन्न होता है न कि अन्य किसी क्षेत्रमें। और इन दोनोंमें स्वामिकृत भी विशेषता है। जैसे अवधिज्ञान तो संयत असंयत सब ही जीवोंको सब गतियोंमें होता है; परन्तु मनःपर्यायज्ञान मनुष्य योनिमें सो भी केवल संयतीको होता है, अन्य जीवको व असंयत मनुष्यको नहीं। और इन दोनोंमें विषयकृत भी विशेषता है। जैसे रूपवाले द्रव्योंमें असर्वपर्यायोंमें ही अवधिज्ञानका विषय निबंध है, अर्थात् अवधिज्ञानी रूपीद्रव्योंके कतिपय पर्यायोंको ही जान सक्ता है, न कि सम्पूर्ण द्रव्य तथा सर्व पर्यायोंको, परन्तु मनःपर्याय ज्ञानका विषय तो उसके अनन्त भागमें भी है। तात्पर्य यह कि जो रूपीद्रव्य अवधिज्ञानसे जाना जाता है, उसके अनन्तवें सूक्ष्म भागको भी मनःपर्यायज्ञान जान लेता है॥ २६॥

अत्राह। उक्तं मनःपर्य्यायज्ञानम्। अथ केवलज्ञानं किमिति। अत्रोच्यते। केवलज्ञानं दशमेऽध्याये वक्ष्यते। मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलमिति॥

अब यहांपर कहते हैं, कि मनःपर्यायज्ञानका वर्णन तो कर चुके, अब उसके अनन्तर क्रमप्राप्त केवलज्ञान क्या वस्तु है? । यहां कहते हैं कि, केवल ज्ञानको विशेष-

रूपसे दशवें अध्यायमें "मोहके क्षयसे तथा ज्ञानावरणी दर्शनावरणी अन्तरायके क्षयसे केवल ज्ञान होता है,, इस प्रकार कहेंगे ।

अत्राह । एषां मतिज्ञानादीनां ज्ञानानां कः कस्य विषयनिबन्ध इति अत्रोच्यते ।

अब पुनः कहते हैं कि ये जो मतिश्रुतादि ज्ञान हैं, इनमेंसे किसका क्या विषय निबन्ध है अर्थात् किस ज्ञानसे कौनसा किस प्रकारका पदार्थ जाना जाता है । इसके उत्तरमें सूत्र कहते हैं ।

मतिश्रुतयोर्निबन्धः सर्वद्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—सम्पूर्ण द्रव्योंके असर्व (कतिपय) पर्यायोंमें मतिज्ञान और श्रुतिज्ञान इन दोनोंका विषय निबन्ध है ।

भाष्यम्—मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोर्विषयनिबन्धो भवति सर्वद्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु । ताभ्यां हि सर्वाणि द्रव्याणि जानीते न तु सर्वैः पर्यायैः ।

विशेषव्याख्या—मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानका विषय कतिपय (कुछ, न कि सब) पर्याय सहित जो कि सम्पूर्ण द्रव्य हैं, उनमें है अर्थात् इन दोनों ज्ञानोंसे जीव सब द्रव्योंको जानता है, परन्तु सब द्रव्योंके सब पर्यायोंको नहीं जानता । अपने योग्य कुछ पर्यायोंको ही जानता है ॥ २७ ॥

रूपिष्ववधेः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—कृष्णपीतादि जो रूपवान् द्रव्य हैं, उन्हींमें अवधिज्ञानका विषय निबन्ध है ।

भाष्यम्—रूपिष्वेव द्रव्येष्ववधिज्ञानस्य विषयनिबन्धो भवति असर्वपर्यायेषु । सुविशुद्धेनाप्यवधिज्ञानेन रूपीण्येव द्रव्याण्यवधिज्ञानी जानीते तान्यपि न सर्वैः पर्यायैरिति ॥

विशेष व्याख्या—जो पदार्थ व द्रव्य रूपवाले हैं, वे ही अवधि ज्ञानके विषय हैं । उन रूपी द्रव्योंमें सम्पूर्ण पर्याय अवधिज्ञानके विषय नहीं हैं, किन्तु कतिपय पर्याय अत्यन्त शुद्ध अवधिज्ञानद्वारा भी रूपवान् ही पदार्थ जाने जाते हैं, न कि रूप रहित । और रूपवान् द्रव्य भी सम्पूर्ण पर्यायों सहित नहीं जाने जाते, किन्तु कतिपय पर्याय सहित ही जाने जाते हैं ॥ २८ ॥

तदनन्तभागे मनःपर्यायस्य ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—उसके अनन्तवें भागमें मनःपर्यायज्ञानका विषयनिबन्ध है ।

भाष्यम्—यानि रूपीणि द्रव्याण्यवधिज्ञानी जानीते ततोऽनन्तभागे मनःपर्यायस्य विषयनिबन्धो भवति । अवधिज्ञानविषयस्यानन्तभागं मनःपर्यायज्ञानी जानीते रूपिद्रव्याणि मनोरहस्यविचारगतानि च मानुषक्षेत्रपर्यापन्नानि विशुद्धतराणि चेति ॥

विशेषव्याख्या—जिन रूपीद्रव्योंको अवधिज्ञानी जानता है, उससे अनन्त भागमें मनःपर्यायज्ञानका विषय निबंध है । अवधिज्ञानका विषय जो पदार्थ है, उसका अनन्तभाग अति सूक्ष्मतर मनःपर्यायज्ञानका विषय है । अतएव अवधिज्ञानके विषयके अनन्तवें भागको मनःपर्यायज्ञानी जानता है । और रूपीद्रव्योंको भी जो मनमें रहस्य गुप्त भावको प्राप्त मानुषक्षेत्रमें व्यवस्थित हैं, उनको जानता है । और मानुषक्षेत्रमें स्थित विशुद्धतर रूपी द्रव्य हैं, उनको मनःपर्यायज्ञानी जानता है ॥ २९ ॥

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—सम्पूर्ण द्रव्य तथा सम्पूर्ण पर्यायोंमें केवल ज्ञानका विषय निबन्ध है ।

भाष्यम्—सर्वद्रव्येषु सर्वपर्यायेषु च केवलज्ञानस्य विषयनिबन्धो भवति । तद्धि सर्वभावग्राहकं संभिन्नलोकालोकविषयम् । नातः परं ज्ञानमस्ति । न च केवलज्ञानविषयात्परं किंचिदन्यज्ज्ञेयमस्ति । केवलं परिपूर्णं समग्रमसाधारणं निरपेक्षं विशुद्धं सर्वभावज्ञापकं लोकालोकविषयमनन्तपर्यायमित्यर्थः ॥

विशेष व्याख्या—जीवादि सम्पूर्ण द्रव्य तथा उन द्रव्योंके यावत् पर्याय हैं, वे सब केवल ज्ञानके विषय हैं । वह केवल ज्ञान संभिन्न लोक तथा अलोक सर्व विषयक है और सर्वभावोंका ग्राहक अर्थात् ग्रहण करनेवाला है । केवल ज्ञानसे बढकर कोई भी ज्ञान नहीं है । और केवल ज्ञानका जो विषय है, उससे परे कोई ऐसा अन्य पदार्थ भी नहीं है, जो कि केवल ज्ञानसे प्रकाशित न होवे । तात्पर्य्य यह है, कि सम्पूर्ण विषय तथा सम्पूर्ण विषयोंके सम्पूर्ण स्थूल तथा सूक्ष्म सर्व पर्याय हैं, उन सबको केवल ज्ञान प्रकाशित करता है । केवल ज्ञान परिपूर्ण है । समग्र है । असाधारण है । अन्य ज्ञानोंसे निरपेक्ष है अर्थात् निज विषयोंको अन्यकी अपेक्षा न रखके स्वयं सबको प्रकाशित करता है । विशुद्ध है । सर्व भावोंका ज्ञापक अर्थात् जतानेवाला है । लोकालोक विषयक है, अर्थात् लोक अलोक सभी इसके विषय हैं । तथा अनन्त पर्याय है, अर्थात् सब द्रव्योंके अनन्त पर्यायोंको यह केवलज्ञान प्रकाश करता है ॥ ३० ॥

अत्राह । एषां मतिज्ञानादीनां युगपदेकस्मिञ्जीवे कति भवन्तीति । अत्रोच्यते ।

अब यहांपर कहते हैं, कि ये जो मतिज्ञानादि ज्ञान हैं, इनमेंसे एक कालमें तथा एक जीवमें कितने ज्ञान हो सक्ते हैं, अर्थात् एक ही कालमें एक ही जीवमें एक वा दो अथवा और कितने ज्ञान हो सक्ते हैं? इस हेतुसे यह अग्रिमसूत्र कहते हैं ।

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—एक कालमें तथा एक जीवमें मति आदिज्ञानोंमेंसे एकसे लेकर चारतक ज्ञान हो सक्ते हैं ।

भाष्यम्—एषां मत्यादीनां ज्ञानानामादित एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिञ्जीवे आ चतुर्भ्यः। कस्मिंश्चिज्जीवे मत्यादीनामेकं भवति। कस्मिंश्चिज्जीवे द्वे भवतः। कस्मिंश्चित्त्रीणि भवन्ति। कस्मिंश्चिच्चत्वारि भवन्ति। श्रुतज्ञानस्य तु मतिज्ञानेन नियतः सहभावस्तत्पूर्वकत्वात्। यस्य तु मतिज्ञानं तस्य श्रुतज्ञानं स्याद्वा न वेति। अत्राह। अथ केवलज्ञानस्य पूर्वैर्मतिज्ञानादिभिः किं सहभावो भवति। नेत्युच्यते। केचिदाचार्या व्याचक्षते। नाभावः। किं तु तदभिभूतत्वादकिंचित्कराणि भवन्तीन्द्रियवत्। यथा वा व्यभ्रे नभसि आदित्य उदिते भूरितेजस्त्वादादित्येनाभिभूतान्यन्यतेजांसि ज्वलनमणिचन्द्रनक्षत्रप्रभृतीनि प्रकाशनं प्रत्यकिंचित्कराणि भवन्ति तद्वदिति। केचिदप्याहुः। अपायसद्द्रव्यतया मतिज्ञानं तत्पूर्वकं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानमनःपर्यायज्ञाने च रूपिद्रव्यविषये तस्मान्नैतानि केवलिनः सन्तीति॥ किं चान्यत्। मतिज्ञानादिषु चतुर्षु पर्यायेणोपयोगो भवति न युगपत्। संभिन्नज्ञानदर्शनस्य तु भगवतः केवलिनो युगपत्सर्वभावग्राहके निरपेक्षे केवलज्ञाने केवलदर्शने चानुसमयमुपयोगो भवति॥ किं चान्यत्। क्षयोपशमजानि चत्वारि ज्ञानानि पूर्वाणि क्षयादेव केवलं। तस्मान्न केवलिनः शेषानि ज्ञानानि सन्तीति॥

विशेष व्याख्या—ये जो मतिज्ञानादि ज्ञान कहे हैं, उनमेंसे आरंभसे (मतिज्ञानसे लेकर) एक कालमें तथा एक जीवमें एक ज्ञानसे लेकर चार ज्ञानतक प्राप्त हो सक्ते हैं। किसी जीवमें एक ही ज्ञान होता है, किसीमें दो होते हैं, किसी जीवमें तीन होते हैं और किसी जीवमें चारों ज्ञान होते हैं। तात्पर्य यह है, कि एक कालमें किसी जीवमें एक मतिज्ञान ही होता है। किसीमें मति श्रुत दोनों होते हैं, अथवा मति अवधि और मति मनःपर्याय होते हैं, किसीमें मति, श्रुत अवधि ये तीन होते हैं। और किसीमें मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्याय ये चारों होते हैं। किन्तु यह अवश्य जानना उचित है, कि जहां श्रुतज्ञान है, वहां उसके साथ मतिज्ञानका पूर्व सहभाव अवश्य नियत है, क्योंकि मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है। अतएव यह नियम है, कि जिसको श्रुतज्ञान है उसको नियमसे मतिज्ञान है; परन्तु जिसको मतिज्ञान है उसको श्रुतज्ञान हो भी और न भी हो। अब यहांपर यह कहते हैं कि, केवल ज्ञानका मतिज्ञानादिके साथ सहभाव है कि नहीं है? उत्तर–केवल ज्ञानके साथ मतिज्ञानादिका सहभाव नहीं है। परन्तु कोई २ आचार्य कहते हैं कि, केवल ज्ञानकी सत्ता दशामें मतिज्ञानादि ज्ञानोंका अभाव नहीं है किन्तु केवलज्ञानसे वे मत्यादि ज्ञान अभिभूत (पराजित) होनेसे ऐसे अकिंचित्कर हैं, जैसे कि नेत्रादि इन्द्रियां। केवल दशामें मतिश्रुतादि अन्यज्ञान अभिभूत होकर ऐसे अकिंचित्कर हैं, जैसे मेघ रहित आकाशमें सूर्यके उदित होनेपर अधिक तेजके कारण सूर्यसे अभिभूत अग्नि, मणि, चन्द्रमा तथा नक्षत्रादिके तेज प्रकाश करनेमें अकिंचित्कर हैं। और कोई ऐसा कहते हैं कि अपाय सद्द्रव्यता अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे उपलब्ध पदार्थके निश्चयार्थ मतिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है।

इस हेतुसे श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक है। अवधिज्ञान तथा मनःपर्याय ज्ञान भी रूपी द्रव्यके विषयमें अपायसद्रव्यतासे ही प्रवृत्त होता है। अतः उनकी सत्तामें मतिज्ञान रह सक्ता है। और केवलज्ञानीको इन्द्रियद्वारा पदार्थोपलब्धि नहीं होती, इस कारणसे केवलज्ञानीको मतिज्ञानादिज्ञान नहीं है। किं चान्यत्। और भी यह बात है, कि मतिज्ञानादि चारों ज्ञानोंमें पर्याय वा क्रमसे उपयोग होता है न कि एक ही कालमें। और मिलित है ज्ञानदर्शन जिसका ऐसे भगवान् केवलीको तो एक ही कालमें सर्वभावके ज्ञापक वा ग्राहक और अन्यज्ञाननिरपेक्ष केवलज्ञान तथा केवलदर्शन होते हैं और प्रतिक्षण वा प्रतिसमय ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग होता है। और यह भी है, कि पूर्वमतिज्ञानादि चार ज्ञान तो ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं, और केवल ज्ञान क्षयसे ही उत्पन्न होता है; इसलिये भी केवलज्ञानीको मतिज्ञान आदि शेप चार ज्ञान नहीं होते ॥३१॥

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—मति, श्रुत तथा अवधिज्ञान विपर्यय रूप भी होते है अर्थात् ये अज्ञानरूप भी हो जाते हैं।

---

(१) नेत्रादि इन्द्रियोंसे उपलब्ध जो ईहित पदार्थ है, उसके निश्चयको अपाय कहते हैं. अर्थात् अवग्रह तथा ईहारूप मतिज्ञानसे गृहीत पदार्थके निश्चयको अपाय कहते हैं. ऐसा अपाय केवलीको अपेक्षित नहीं है, इस कारण केवलीको मतिज्ञानादिकी आवश्यकता नहीं है।

(२) **किं चान्यत्** इससे अपने दोनों आशयोंको ग्रन्थकर्त्ता प्रकाश करते हैं, कि मतिज्ञानादि चारो ज्ञानोंमें पर्यायसे क्रमसे उपयोग तथा निज २ विषयग्राहिता होती है, न कि एक कालमें। इनमें एक २ कालमें न तो उपयोग ही है, और न निज २ विषयोंमें ग्राहकतारूप व्यापार ही है। जिस समय मतिज्ञानी मतिज्ञानसे उपयुक्त है अर्थात् मतिज्ञानरूप उपयोग उसमें है, उस समय अन्यश्रुतादि ज्ञानसे नहीं; और इसीप्रकार जिस समय श्रुतज्ञानसे उपयुक्त है, उस समय अन्यमतिआदि ज्ञानसे नहीं है। और केवलीको तो क्रमसे एतद्ज्ञानगत उपयोग नहीं है क्योंकि उसके विषयमें यह कहा गया है कि उसके दर्शन तथा ज्ञान संमिलित है। विशेष ग्राहक ज्ञान और सामान्य ग्राहक दर्शन ये दोनों जिस केवली भगवानके संभिन्न हैं, अर्थात् सर्वभाव ग्राहक है और माहात्म्यादि गुणोंसे संयुक्त सर्व द्रव्यपर्यायग्राहक केवल ज्ञान जिसको है वह केवली भगवान् है। उनको एक कालमें ही प्रतिसमय उपयोग होता है। सर्वभाव पंचास्तिकायादिका ग्राहक तथा इन्द्रियादिकी अपेक्षासे रहित उसका ज्ञान है। उसमें कालकृतव्यवधानसे शून्य निरन्तर उपयोग होता रहता है। 'अनुसमय, पदसे वारंवार उपयोग होता है, यह तात्पर्य्य है। कोई २ पंडितमन्य इस सूत्रका अन्यथा व्याख्यान करते हैं वह असंगत है। कदाचित् यह कहो कि, साकारज्ञान तथा निराकारदर्शन इन शब्दोंमें भेद होनेसे वारंवार एक कालमें ही दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग नहीं हो सक्ता, क्योंकि प्रथम सामान्य ग्राहक निराकार दर्शन हो लेगा, पश्चात् ज्ञानोपयोग होगा सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि केवली भगवानका जब ज्ञानावरणी सर्वथा क्षीण हो गया और दर्शनावरणी भी सर्वथा निरवशेष नष्ट हो गया तब आवरण भेद कहां रहा? भगवान् केवलीका ज्ञान तो सर्वथा और सर्वदा विशेषरूपको परिच्छिन्न करके पदार्थ ग्राहक है। वहां अष्टविधि ज्ञानोपयोग और चतुर्विधि दर्शनोपयोग यह भी भेद न रहा, इससे सिद्ध हुआ, कि केवलीको मत्यादि ज्ञान नहीं होते।

भाष्यम्—मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानमिति । विपर्ययश्च भवत्यज्ञानं चेत्यर्थः । ज्ञानविपर्ययो ऽज्ञानमिति । अत्राह । तदेव ज्ञानं तदेवाज्ञानमिति । ननु च्छायातपवच्छीतोष्णवच्च तदत्यन्तविरुद्धमिति । अत्रोच्यते । मिथ्यादर्शनपरिग्रहाद्विपरीतग्राहकत्वमेतेषाम् । तस्मादज्ञानानि भवन्ति । तद्यथा । मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानमिति । अवधिर्विपरीतो विभङ्ग इत्युच्यते ॥

विशेषव्याख्या—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान ये विपर्यय अर्थात् अज्ञान स्वरूपताको भी प्राप्त होते हैं क्योंकि विपर्यय कहनेसे ज्ञानका विपर्यय वा विरोधी अज्ञान हुआ । अब यहांपर कहते हैं, कि वे ही मति आदि ज्ञान और वे ही अज्ञान हैं ऐसा कथन किया सो यह कथन छाया और आतप अथवा शीत और उष्णके समान अत्यन्त विरुद्ध है, अर्थात् एकहीमें दो विरुद्ध धर्म कैसे रह सक्ते हैं? अब इसका उत्तर कहते हैं कि मिथ्यादर्शनके होनेसे इन मत्यादिज्ञानोंकी विपरीतग्राहकता हो जाती है, इस कारणसे ये अज्ञान हो जाते हैं । जैसे **मत्यज्ञान**, **श्रुताज्ञान**, और **विभङ्गज्ञान** । विपरीतावधिज्ञानको ही **विभङ्गज्ञान** कहते हैं, अथवा कुमति, कुश्रुत कुअधि वा विभङ्गावधि यों भी मति आदिके विपर्ययको कहते हैं ॥ ३२ ॥

अत्राह । उक्तं भवता सम्यग्दर्शनपरिगृहीतं मत्यादिज्ञानं भवत्यन्यथा ज्ञानमेवेति मिथ्यादृष्टयोऽपि च भव्याश्चाभव्याश्चेन्द्रियनिमित्तानविपरीतान्स्पर्शादीनुपलभन्ते उपदिशन्ति च स्पर्श स्पर्श इति रसं रस इति । एवं शेषान् । तत्कथमेतदिति । अत्रोच्यते । तेषां हि विपरीतमेतद्भवति ।

अब यहांपर कहते हैं, कि आपने यह कहा, कि सम्यग्दर्शनके[1] होनेसे तो मत्यादि ज्ञान हैं और अन्यथा अर्थात् मिथ्यादर्शनके होनेसे विपरीत अर्थात् अज्ञान हो जाते हैं, यह कैसे संगत होता है? क्योंकि मिथ्यादृष्टिजन भी कोई भव्य हैं, कोई अभव्य हैं वे भी इन्द्रिय अनिन्द्रिय निमित्तक अविपरीत स्पर्शादि विषयोंको प्राप्त होते हैं । और स्पर्शको स्पर्श, रसको रस, तथा रूपको रूप कहते हैं, इसी प्रकार शेष इन्द्रियोंके विषयोंको आपके समान मिथ्यादृष्टि भी उपलब्ध करते हैं, तब यह कैसे हो सक्ता है कि आपगृहीत तो मत्यादि ज्ञान है और अन्यगृहीत[2] अज्ञान है? । अब यहां उत्तर देते हैं कि मिथ्यादृष्टियोंके मतिआदिज्ञान विपरीत अर्थात् अज्ञान ही होते हैं, क्योंकि उनको विवेक नहीं है । इसलिये यह अग्रिमसूत्र कहते हैं ।

सदसतो रविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—मिथ्यादृष्टियोंके उन्मत्तके समान सत् तथा असत्की अविशेषसे यदृच्छापूर्वक उपलब्धि होनेसे मत्यज्ञान श्रुताज्ञान विभङ्गज्ञान ही होते है ।

---

१ सम्यग्दृष्टी. २ मिथ्यादृष्टी.

भाष्यम्—यथोन्मत्तः कर्मोदयादुपहतेन्द्रियमतिर्विपरीतग्राही भवति सोऽश्वं गौरित्यध्यवस्यति गां चाश्व इति लोष्टं सुवर्णमिति सुवर्णं लोष्ट इति लोष्टं च लोष्ट इति सुवर्णं सुवर्णमिति तस्यैवमविशेषेण लोष्टं सुवर्णं सुवर्णं लोष्टमिति विपरीतमध्यवस्यतो नियतमज्ञानमेव भवति । तद्वन्मिथ्यादर्शनोपहतेन्द्रियमतेर्मतिश्रुतावधयोऽप्यज्ञानं भवन्ति ॥

विशेषव्याख्या—जैसे उन्मत्त पुरुष कर्मोंके उदयसे इन्द्रियोंकी मति वा शक्तिके नष्ट हो जानेसे विपरीतअर्थका ग्राही हो जाता है और विपरीत ग्रहणके स्वभावसे अश्व को गौ, गौको अश्व निश्चय करता है । पाषाण को सोना, सोनेको पाषाण, माताको स्त्री, तथा स्त्रीको माता, और कदाचित् अविशेषरूपसे घोडेको घोडा, पाषाणको पाषाण, माताको माता, और स्त्रीको स्त्री भी यदृच्छासे जानता है । उसको इस प्रकार अनालोचनपूर्वक यदृच्छासे अविशेषतापूर्वक पाषाणको सुवर्ण, सुवर्णको पाषाणरूपसे विपरीत निश्चय होनेसे अज्ञान ही है, ऐसे ही मिथ्यादर्शनके आग्रहसे जिसकी इन्द्रियां उपहत (नष्टशक्ति) हो गई हैं, उसको मति, श्रुत तथा अवधिज्ञान भी अज्ञान ही हैं ॥ ३३ ॥

उक्तं ज्ञानं । चारित्रं नवमेऽध्याये वक्ष्यामः । प्रमाणे चोक्ते । नयान्वक्ष्यामः तद्यथा ।

ज्ञानका वर्णन कर चुके, चारित्र नववें अध्यायमें कहेंगे । प्रमाण भी परोक्षप्रत्यक्षभेदसे कह चुके, अब आगे नयका निरूपण करते हैं । जैसेः—

नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—नैगमादि पांच नय हैं ।

भाष्यम्—नैगमः सङ्ग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्रः शब्द इत्येते पञ्च नया भवन्ति । तत्र ।

विशेषव्याख्या—नैगम, संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र, तथा शब्द ये पांच नय हैं ॥ ३४ ॥ उनमें ।

आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—आद्य अर्थात् प्रथम नैगम नय दो प्रकारका है, शब्दनयके तीन भेद हैं ।

भाष्यम्—आद्य इति सूत्रक्रमप्रामाण्यान्नैगममाह । स द्विभेदो देशपरिक्षेपी सर्वपरिक्षेपी चेति । शब्दस्त्रिभेदः साम्प्रतः समभिरूढ एवम्भूत इति ॥ अत्राह । किमेषां लक्षणमिति । अत्रोच्यते । निगमेषु येऽभिहिताः शब्दास्तेषामर्थः शब्दार्थपरिज्ञानं च देशसमग्रग्राही नैगमः। अर्थानां सर्वैकदेशसङ्ग्रहणं संग्रहः । लौकिकसम उपचारप्रायो विस्तृतार्थो व्यवहारः । सतां साम्प्रतानामर्थानामभिधानपरिज्ञानमृजुसूत्रः । यथार्थाभिधानं शब्दः । नामादिषु प्रसिद्धपूर्वाच्छब्दादर्थे प्रत्ययः साम्प्रतः । सत्स्वर्थेष्वसङ्क्रमः समभिरूढः । व्यञ्जनार्थयोरेवम्भूत इति ॥

विशेष व्याख्या—उन पांच नयोंके मध्यमें आदिमें होनेवाले नैगम नयके दो भेद हैं । जैसे देशपरिक्षेपी और सर्वपरिक्षेपी । और शब्दनयके तीन भेद हैं, साम्प्रत, सम-

भिरूढ, एवंभूत। अब इन नयोंके लक्षण क्या हैं। इसलिये कहते हैं:-निगमोंमें (शास्त्रोंमें) जो शब्द कहे गये हैं, उनके अर्थ, और शब्द तथा अर्थका जो ज्ञान है वह एकदेशसे ग्राही वा समग्ररूपसे ग्राही नैगम है। अर्थोंका सब रूपसे वा एकदेशसे जो संग्रह है, उसको संग्रह कहते हैं। लौकिकके समान उपचारसे बहुधा पूर्ण और विस्तृत अर्थका बोधक जो है वह व्यवहार नय है। विद्यमान सांप्रतिक अर्थोंका अभिधान अथवा परिज्ञान जो है, उसको ऋजुसूत्र कहते हैं। और यथार्थ वस्तुका कथन वा नाम जो है, उसको शब्दनय कहते हैं। नामादिकमें प्रसिद्ध पूर्व शब्दसे जो शब्दार्थमें प्रत्यय अर्थात् ज्ञान है, वह सांप्रत शब्द नय है। विद्यमान अर्थोंमें जो असंक्रम है, वह समभिरूढ शब्द-नय है। और व्यञ्जन तथा अर्थमें जो प्रवृत्त है, वह एवंभूतनय है॥ ३५॥

भाष्यम्—अत्राह। उद्दिष्टा भवता नैगमादयो नयाः। तन्नया इति कः पदार्थ इति। नयाः प्रापकाः कारकाः साधका निर्वर्तका निर्भासका उपलम्भका व्यञ्जका इत्यनर्थान्तरम्। जीवादीन्पदार्थान्नयन्ति प्राप्नुवन्ति कारयन्ति साधयन्ति निर्वर्तयन्ति निर्भासयन्ति उपलम्भयन्ति व्यञ्जयन्तीति नयाः॥

अब यहांपर कहते हैं, कि आपने नैगम आदि नयोंका संकीर्तन किया, अब उन नयोंमें नयत्व क्या पदार्थ हैं? अर्थात् यहां नयशब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है? इसका उत्तर कहते हैं:- नय, प्रापक (अर्थविशेषको प्राप्त करानेवाले) कारक (विशेष कार्यके करनेवाले) साधक, निर्वर्त्तक, निर्भासक (किसी अर्थके प्रकाशक) उपलम्भक, तथा व्यञ्जक ये सब पर्यायवाचक वा समानार्थक शब्द हैं। जो जीवादि पदार्थोंको प्राप्त करते हैं, प्राप्त होते हैं, कराते हैं, सिद्ध करते हैं, व्यवहारमें वर्त्ताते हैं, प्रकाशित करते हैं, उपलब्ध करते हैं, और प्रकट करते हैं, वे नय हैं। तात्पर्य यह कि नयशब्दका प्रापक, कारक तथा साधक आदि अर्थ है।

भाष्यम्—अत्राह। किमेते तन्त्रान्तरीया वादिन आहोस्वित्स्वतन्त्रा एव चोदकपक्षग्राहिणो मतिभेदेन विप्रधाविता इति। अत्रोच्यते। नैते तन्त्रान्तरीया नापि स्वतन्त्रा मतिभेदेन विप्रधाविताः। ज्ञेयस्य त्वर्थस्याध्यवसायान्तराण्येतानि। तद्यथा। घट इत्युक्ते योऽसौ चेष्टाभिनिर्वृत्त ऊर्ध्वकुण्डलौष्ठायतवृत्तग्रीवोऽधस्तात्परिमण्डलो जलादीनामाहरणधारणसमर्थ उत्तरगुणनिर्वर्तनानिर्वृत्तो द्रव्यविशेषस्तस्मिन्नेकस्मिन्विशेषवति तज्जातीयेषु वा सर्वेष्वविशेषात्परिज्ञानं नैगमनयः। एकस्मिन्वा बहुषु वा नामादिविशेषितेषु साम्प्रतातीतानागतेषु घटेषु सम्प्रत्ययः सङ्ग्रहः। तेष्वेव लौकिकपरीक्षकग्राह्येषूपचारगम्येषु यथास्थूलार्थेषु संप्रत्ययो व्यवहारः। तेष्वेव सत्सु साम्प्रतेषु संप्रत्यय ऋजुसूत्रः। तेष्वेव साम्प्रतेषु नामादीनामन्यतमग्राहिषु प्रसिद्धपूर्वकेषु घटेषु सम्प्रत्ययः साम्प्रतः शब्दः। तेषामेव साम्प्रतानामध्यवसायासङ्क्रमो वितर्कध्यानवत् समभिरूढः। तेषामेव, व्यञ्जनार्थयोरन्योन्यापेक्षार्थग्राहित्वमेवम्भूत इति॥

यहांपर यह शंका करते हैं, कि ये नय हैं, सो जैनतन्त्र (शास्त्र) से भिन्न जो कणाद आदिके शास्त्र वैशेषिक आदि हैं, उनमें कुशल जो वादी हैं उनके संकेत हैं अर्थात् वैशेषिकतन्त्रवादीजन इनको नय कहते हैं ? अथवा स्वतन्त्र (निज जैनशास्त्र) के संकेतसिद्ध चोदक पक्षग्राही अर्थात् दुरुक्त विषयके सूचक पक्षको ग्रहण करनेवाले अयथार्थ अर्थको मतिभेदसे कहनेकेलिये सहसा प्रवृत्त होनेवाले ये नय हैं? इसका समाधान करते हैं, कि ये नय कणाद वैशेषिक आदि शास्त्रोंके नहीं हैं, और स्वतंत्र मतभेदसे अयथार्थ अर्थके निरूपणकेलिये भी नहीं दौड पडे हैं, किन्तु ज्ञेय जीवादिक पदार्थोंके बोध करानेको उपाय विशेष ये नैगमादि नय हैं। जैसे घट (घटा) ऐसा कहनेपर कुंभकारकी चेष्टाओंसे उत्पन्न उर्ध्वदेशमें कुंडलाकार, विस्तृत, ओष्टसहित, वर्तुलाकार, ग्रीवायुक्त, अधोदेशमें परिमंडलाकार, जलादि द्रवीभूत पदार्थोंके आनयन तथा धारणादि कार्योंमें समर्थ, तथा उत्तरोत्तर पाकजनित रक्तादिगुणोंकी समाप्तिसिद्ध जो द्रव्य विशेष है उस एकमें वा उस जातिके सम्पूर्ण घटोंमें अविशेषरूपसे जो परिज्ञान है, वह नैगम नयका विषय हैं। तथा एक अथवा अनेक वर्तमान, अतीत, अनागत (होनेवाले) नाम आदिसे विशेषित घटोंका जो ज्ञान है, वह संग्रहनय हैं, अर्थात् संग्रहनयका विषय है। और लौकिक परीक्षाओंसे ग्रहण करने योग्य उपचारसे जानने योग्य उन्हीं घटोंमें स्थूल पदार्थोंके तुल्य जो ज्ञान है वह व्यवहार नय है। तथा वर्तमान कालमें विद्यमान उन्हीं घटोंमें जो ज्ञान है वह ऋजुसूत्र नयका विषय है। तथा नामादिमेंसे किसी एकके द्वारा ग्राह्य और प्रसिद्धिपूर्वक उन्हीं वर्तमानकालिक घटोंमें जो ज्ञान है वह सांप्रत शब्द नयका विषय है। और वितर्क ध्यानके समान उन्हीं सांप्रत घटोंमें अध्यवसाय (निश्चयात्मक ज्ञान) का जो असंक्रम है वह समभिरूढ नय है। और उन्हींमें व्यञ्जन तथा अर्थकी परस्पर अपेक्षासे जो पदार्थग्राहकता है, वह एवंभूत नयका विषय है।

भाष्यम्—अत्राह। एवमिदानीमेकस्मिन्नर्थेऽध्यवसायनानात्वान्ननु विप्रतिपत्तिप्रसङ्ग इति। अत्रोच्यते। यथा सर्वमेकं सदविशेषात् सर्वं द्वित्वं जीवाजीवात्मकत्वात् सर्वं त्रित्वं द्रव्यगुणपर्यायावरोधात् सर्वं चतुष्ट्वं चतुर्दर्शनविषयावरोधात् सर्वं पञ्चत्वमस्तिकायावरोधात् सर्वं षट्त्वं षड्द्रव्यावरोधादिति । यथैता न विप्रतिपत्तयोऽथ चाध्यवसायस्थानान्तराण्येतानि तद्वन्नयवादा इति । किं चान्यत्। यथा मतिज्ञानादिभिः पञ्चभिर्ज्ञानैर्धर्मादीनामस्तिकायानामन्यतमोऽर्थः पृथक् पृथगुपलभ्यते पर्यायविशुद्धिविशेषादुत्कर्षेण न च ता विप्रतिपत्तयः तद्वन्नयवादाः। यथा वा प्रत्यक्षानुमानोपमानाप्तवचनैः प्रमाणैरेकोऽर्थः प्रमीयते स्वविषयनियमात् न च ता विप्रतिपत्तयो भवन्ति तद्वन्नयवादा इति। आह च—

अब यहांपर कहते हैं, कि एक ही पदार्थमें ज्ञानकी अनेकता (नैगम संग्रह आदि रूपसे अनेक ज्ञानविषयता) होनेसे विवादका प्रसङ्ग हो गया, अर्थात् कीदृशज्ञानसे यहां-

पर घट ग्राह्य है ? इस प्रकार विवाद प्राप्त हुआ। इसका उत्तर कहते हैं:– सर्व एक ही है, क्योंकि सत्स्वरूपसे सबमें अभेद है, अर्थात् सद्रूपसे सब अभिन्न है। जैसे जो सत् है धर्म सत् है, अधर्म सत् है, आकाश सत् है, इस प्रकार सत्स्वरूपसे किसीमें भेद नहीं है। तथा सब द्विविध है, क्योंकि सब कुछ चेतन और अचेतनमय है, चेतन और अचेतनसे भिन्न कुछ नहीं हैं, इसलिये चेतन और अचेतन भेदसे सब द्विविध है। तथा सब त्रित्व संख्यायुक्त है; क्योंकि द्रव्य, गुण और पर्यायरूप ही समस्त लोक है। द्रव्य गुण और पर्याय इनसे भिन्न कुछ नहीं है; इसलिये सब जगत त्रिविध है। तथा सब चार संख्या युक्त है, क्योंकि चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन तथा केवलदर्शन इन चार प्रकारके दर्शनविषयोंमें सब गतार्थ है। तथा सब कुछ पंचसंख्यामय है, क्योंकि जीवास्तिकायादि पंचास्तिकायमें सब गतार्थ है। तथा सब कुछ षट्संख्यामय हैं; क्योंकि षड्द्रव्यमें सब अन्तर्भूत है। जैसे एकत्व, द्वित्व आदि विवादके स्थान नहीं हैं, किन्तु कथन तथा ज्ञानकी भिन्न २ परिपाटी है, ऐसे ही नयवाद भी हैं। किं च दूसरी यह भी वार्त्ता है, कि जैसे मतिज्ञान आदि पांच ज्ञानोंसे धर्मास्तिकाय आदि पंचास्तिकायोंमें कोई एक अस्तिकायरूप पदार्थ पर्यायविशुद्धि तथा उत्कर्षसे पृथक् २ उपलब्ध होता है; और वह पृथक् २ उपलब्धि विप्रतिपत्ति नहीं है, ऐसे ही नयवाद भी हैं। अर्थात् पृथक् २ नयसे भिन्न प्रकारसे पदार्थोंके स्वरूप जाने जाते हैं, इसमें कुछ विवाद नहीं है। अथवा जैसे निज २ विषयके नियमसे प्रत्यक्ष अनुमान उपमान तथा आप्तवचनसे एक ही पदार्थ प्रमाण साक्षात् विषयीभूत किया जाता है, किन्तु वह अनेक प्रमाणोंसे एक पदार्थकी प्रमिति विवाद नहीं है। ऐसे ही नयवाद भी हैं। अब इस विषयमें संक्षिप्त रुचिवालेको बोध करानेके अनुग्रहसे आर्याद्वारा कहते हैं:–

नैगमशब्दार्थानामेकानेकार्थनयगमापेक्षः।
देशसमग्रग्राही व्यवहारी नैगमो ज्ञेयः ॥ १ ॥
यत्सङ्गृहीतवचनं सामान्ये देशतोऽथ च विशेषे।
तत्सङ्ग्रहनयनियतं ज्ञानं विद्यान्नयविधिज्ञः ॥ २ ॥
समुदायव्यक्त्याकृतिसत्तासञ्ज्ञादिनिश्चयापेक्षम्।
लोकोपचारनियतं व्यवहारं विस्तृतं विद्यात् ॥ ३ ॥
साम्प्रतविषयग्राहकमृजुसूत्रनयं समासतो विद्यात्।
विद्याद्यथार्थशब्दं विशेषितपदं तु शब्दनयम् ॥ ४ ॥ इति ॥

निगमजन पदमें होनेवाले शब्द और उनके अर्थोंको नैगम, और उन नैगम शब्दार्थोंमेंसे एक विशेष तथा अनेक सामान्यविषयों वा अर्थोंके एकदेशसे वा समग्ररूपसे ग्रहण करानेमें जो समर्थ है, उसको व्यवहारी नैगम कहते हैं ॥ १ ॥

१ द्रव्यसमूह।

सामान्य विषयमें वा विशेषके विषयमें जो संगृहीतका वचन अभिधान है, उस संग्रह नयके नियत ज्ञानकी नयविधि जाननेवालेको संग्रह नय जानना चाहिये ॥ २ ॥

समुदाय, व्यक्ति, आकृति, सत्ता और संज्ञा अर्थात् नाम स्थापना द्रव्य और भाव आदिके निश्चयकी अपेक्षा रखनेवाला, तथा लौकिक उपचारसे जो नियत है; उसको विस्तृत व्यवहार नय जानना चाहिये ॥ ३ ॥

और संक्षेपसे साम्प्रतविषयका जो ग्राहक है, उसको ऋजुसूत्र नय जानना चाहिये । तथा यथार्थविषयक साम्प्रतसमभिरूढ और एवंभूत इत्यादि पदोंसे जो विशेषित उसको शब्द नय जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भाष्यम्—अत्राह । अथ जीवो नोजीवः अजीवो नोऽजीव इत्याकारिते केन नयेन कोऽर्थः प्रतीयत इति । अत्रोच्यते । जीव इत्याकारिते नैगमदेशसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रसाम्प्रतसमभिरूढैः पञ्चस्वपि गतिष्वन्यतमो जीव इति प्रतीयते । कस्मात् । एते हि नया जीवं प्रत्यौपशमिकादियुक्तभावग्राहिणः । नोजीव इत्यजीवद्रव्यं जीवस्य वा देशप्रदेशौ । अजीव इत्यजीवद्रव्यमेव । नोऽजीव इति जीव एव तस्य वा देशप्रदेशाविति ॥ एवम्भूतनयेन तु जीव इत्याकारिते भवस्थो जीवः प्रतीयते । कस्मात् । एष हि नयो जीवं प्रत्यौदयिकभावग्राहक एव । जीवतीति जीवः प्राणिति प्राणान्धारयतीत्यर्थः । तच्च जीवनं सिद्धे न विद्यते तस्माद्भवस्थ एव जीव इति । नोजीव इत्यजीवद्रव्यं सिद्धो वा । अजीव इत्यजीवद्रव्यमेव । नोऽजीव इति भवस्थ एव जीव इति । समग्रार्थग्राहित्वाच्चास्य नयस्य नानेन देशप्रदेशौ गृह्येते । एवं जीवौ जीवा इति द्वित्वबहुत्वाकारितेष्वपि । सर्वसङ्ग्रहणे तु जीवो नोजीवः अजीवो नोऽजीवः जीवौ नोजीवौ अजीवौ नोऽजीवौ इत्येकद्वित्वाकारितेषु शून्यम् । कस्मात् । एष हि नयः सङ्ख्यानन्त्याज्जीवानां बहुत्वमेवेच्छति यथार्थग्राही । शेषास्तु नया जात्यपेक्षमेकस्मिन्बहुवचनत्वं बहुषु च बहुवचनं सर्वाकारितग्राहिण इति । एवं सर्वभावेषु नयवादाधिगमः कार्यः ।

अब यहांपर कहते हैं । जीव, नोजीव तथा अजीव और नो अजीव ऐसा कहनेपर किस नयसे और कौनसा पदार्थ प्रतीत (ज्ञानविषयीभूत) होता है ? इसका उत्तर कहते हैं, कि 'जीव, ऐसा कहनेसे वा पुकारनेसे नैगम, देशसंग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, साम्प्रत और समभिरूढ नयोंसे पांचो गतियोंमें किसी एक जीवका ज्ञान होता है, क्योंकि ये नैगम आदि नय जीवके प्रति औपशमिकादि भावयुक्त पदार्थके ग्राहक हैं । तथा 'नोजीव, ऐसा कहनेसे अजीवद्रव्य वा जीवके देश प्रदेशका बोध होता है । और 'अजीव, ऐसा कहनेसे अजीव द्रव्यका ही ज्ञान होता है । और 'नो अजीव, ऐसा कहनेसे जीव अथवा जीवके देश प्रदेशका बोध होता है । और एवंभूत नयसे तो 'जीव, ऐसा कहनेसे भवस्थजीवका ग्रहण होता है, क्योंकि यह नय जीवके प्रति औदयिक भावका ग्राहक है। जीव इस शब्दकी व्युत्पत्ति यह है "जीवति (प्राणिति) इति जीवः" अर्थात् जो दशा[1]

1 अवस्था.

प्राणोंको धारण करै । और वह प्राणधारणरूप जीवन सिद्धोंमें नहीं होता, इस हेतुसे 'जीव, ऐसा कहनेसे एवंभूत नयसे तो भवस्थजीवका ही ग्रहण होता है । और 'नो जीव, ऐसा कहनेसे अजीवद्रव्य अथवा सिद्धका ग्रहण होता है । अजीव ऐसा कहनेसे अजीव द्रव्यका ही ग्रहण होता है, और नोजीव ऐसा कहनेसे संसारस्थ जीवका ही ज्ञान होता है । क्योंकि यह एवंभूत नय सम्पूर्णरूपसे पदार्थका ग्राहक है; इसके द्वारा देश तथा प्रदेशका ग्रहण नहीं होता । इसी रीतिसे "जीवौ जीवाः" दो जीव वा बहुत जीव इत्यादि द्वित्व तथा बहुतरूपसे कहनेपर भी संसारस्थ जीवका ही इस नयसे ग्रहण होता है । और सम्पूर्ण जीवमात्रका ग्रहण होनेपर तो जीव, नोजीव (ईषत् जीव), अजीव, नोऽजीव (ईषत् वा किंचित् अजीव) जीव (दो जीव) नोजीव (द्वित्वसंख्या सहित नोजीव) तथा दो अजीव और दो नोऽजीव इत्यादि एकत्व वा द्विरूपसे कहनेपर शून्यका ही बोध होगा । क्योंकि यह यथार्थग्राही नय संख्याकी अनन्ततासे जीवोंके बहुत्वको ही चाहता है। और पूर्वोक्त उदाहरणमें तो एकत्व तथा द्वित्व ही हैं, अर्थात् एकवचन और द्विवचन ही हैं । और शेष जो नय हैं, वे तो जातिकी अपेक्षासे एकमें बहुवचन तथा बहुतमें भी बहुवचनको सम्पूर्ण वचनोंसे एक वचनादिसे आकारित उच्चारित विकल्पोंको ग्रहण करनेवाले हैं । इसी प्रकार सब पदार्थोंमें नयवादका ज्ञान समझना चाहिये ।

भाष्यम्—अत्राह । अथ पञ्चानां ज्ञानानां सविपर्ययाणां कानि को नयः श्रयत इति । अत्रोच्यते । नैगमादयस्त्रयः सर्वाण्यष्टौ श्रयन्ते । ऋजुसूत्रनयो मतिज्ञानमत्यज्ञानवर्जानि षट् ॥ अत्राह । कस्मान्मतिं सविपर्ययां न श्रयत इति । अत्रोच्यते । श्रुतस्य सविपर्ययस्योपग्रहत्वात् । शब्दनयस्तु द्वे एव श्रुतज्ञानकेवलज्ञाने श्रयते । अत्राह । कस्मान्नेतराणि श्रयत इति । अत्रोच्यते । मत्यवधिमनःपर्यायाणां श्रुतस्यैवोपग्राहकत्वात् । चेतनाज्ञस्वाभाव्याच्च सर्वजीवानां नास्य कश्चिन्मिथ्यादृष्टिरज्ञो वा जीवो विद्यते । तस्मादपि विपर्ययान्न श्रयत इति । अतश्च प्रत्यक्षानुमानोपमानाप्तवचनानामपि प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायत इति । आह च—

अब यहांपर कहते हैं, कि कुमति कुश्रुत तथा विभङ्गरूप विपर्यय (अज्ञान) सहित जो मत्यादि पांच ज्ञान हैं, उनमेंसे किन ज्ञानोंको कौन नय आश्रय करता है? इसका उत्तर कहते हैं, कि नैगमसे आदि लेके जो तीन नय हैं, अर्थात् नैगम संग्रह और व्यवहार; सो आठों ज्ञानका अर्थात् कुमति कुश्रुत तथा विभङ्गज्ञान सहित पांचों ज्ञानोंका आश्रय करते हैं। और ऋजुसूत्र नयतो मतिज्ञान तथा मत्यज्ञानको छोड़के षट् ज्ञानोंको आश्रय करता है । यहां कहते हैं, कि ऋजुसूत्र नय विपर्यय सहित मतिज्ञानका आश्रय क्यों नहीं करता? इस पर कहते हैं, कि विपर्यय सहित श्रुतका ही इससे उपग्रह होता है । और शब्दनय तो श्रुतज्ञान तथा केवलज्ञान इन्हीं दोनोंका आश्रय करता है । यहांपर कहते हैं, कि शब्द नय इन दोनोंके सिवाय अन्यका आश्रय क्यों नहीं करता? इसका

उत्तर कहते हैं, कि मति, अवधि, तथा मनःपर्याय ज्ञानोंको श्रुतकी उपग्राहकता है । तथा सब संसारी जीवोंका चेतनज्ञ स्वभाव होनेसे इस नयकी दृष्टिमें कोई मिथ्यादृष्टि अथवा अज्ञानी जीव है ही नहीं । इस कारणसे शब्दनय विपर्ययोंका आश्रय नहीं करेगा । इसी कारण प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, तथा आप्तवचन इनका भी प्रामाण्य हम स्वीकार करते हैं । और कहा भी है;—

विज्ञायैकार्थपदान्यर्थपदानि च विधानमिष्टं च ।
विन्यस्य परिक्षेपान्नयैः परीक्ष्याणि तत्त्वानि ॥ १ ॥
ज्ञानं सविपर्यासं त्रयः श्रयन्त्यादितो नयाः सर्वम् ।
सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यासः ॥ २ ॥
ऋजुसूत्रः षट् श्रयते मतेः श्रुतोपग्रहादनन्यत्वात् ।
श्रुतकेवले तु शब्दः श्रयते नोऽन्यच्छ्रुताङ्गत्वात् ॥ ३ ॥
मिथ्यादृष्ट्यज्ञाने न श्रयते नास्य कश्चिदज्ञोऽस्ति ।
ज्ञस्वाभाव्याज्जीवो मिथ्यादृष्टिर्न चाप्यज्ञः ॥ ४ ॥
इति नयवादाश्चित्राः क्वचिद्विरुद्धा इवाथ च विशुद्धाः ।
लौकिकविषयातीतास्तत्त्वज्ञानार्थमधिगम्याः ॥ ५ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमेऽर्हत्प्रवचनसङ्ग्रहे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

एक अर्थवाचक पदोंको तथा अनेक अर्थके वाचक पदोंको जानकर और इष्ट विधानका विन्यास करके अनन्तर परिक्षेपसे नयोंके द्वारा तत्त्वोंकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥

आदिसे नैगम आदि तीन नय विपर्यय सहित सब ज्ञानोंका आश्रय करते हैं, उसमें सम्यग्दृष्टिको तो ज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टिको विपर्यास होता है ॥ २ ॥

ऋजुसूत्र नय विपर्यय सहित मतिज्ञानको छोड़के शेष षट् ज्ञानोंका आश्रय करता है, क्योंकि मतिज्ञानका अभेद होनेसे श्रुतसे ही उपग्रह हो जाता है, शब्दनय तो श्रुत और केवल ज्ञानका ही आश्रय करता है, न कि अन्यका; क्योंकि शब्दनय श्रुतका ही अङ्ग है ॥ ३ ॥

तथा मिथ्यादृष्टि अज्ञानका आश्रय नहीं करता । क्योंकि इसकी दृष्टिमें ज्ञस्वभाव (ज्ञानी स्वभाव) होनेसे न तो कोई मिथ्यादृष्टि है, और न कोई अज्ञानी है ॥ ४ ॥

इस रीतिसे विचित्र नयवाद कहीं विरुद्ध सदृश होनेपर भी अति विशुद्ध तथा लौकिक विषयोंसे परे हैं, इसीसे तत्त्वार्थज्ञानकेलिये इनको जानना चाहिये ॥ ५ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमेऽर्हत्प्रवचनसङ्ग्रहे आचार्योपाधिधारिपण्डितठाकुर-प्रसादशर्मविरचितभाषाटीकासमलङ्कृतः प्रथमोध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अत्राह । उक्तं भवता जीवादीनि तत्त्वानीति । तत्र को जीवः कथं लक्षणो वेति । अत्रोच्यते ।

यहांपर कहते हैं, कि आपने जीव आदि तत्त्वोंको कहा है, सो जीव क्या और उसका लक्षण क्या है? इसलिये यह अग्रिमसूत्र कहते हैं ।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—औपशमिक, क्षायिक और मिश्रभाव जीवके स्वतत्त्व हैं, तथा औदयिक और पारिणामिक भी हैं ।

भाष्यम्—औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिक औदयिकः पारिणामिक इत्येते पञ्च भावा जीवस्य स्वतत्त्वं भवन्ति ।

विशेषव्याख्या—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक तथा पारिणामिक । ये पांचभाव जीवके निजतत्त्व अर्थात् निज स्वभाव हैं ॥ १ ॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—औपशमिक आदि पांच भाव यथाक्रमसे दो, नव, अठारह, इक्कीस तथा तीन भेदवाले हैं ।

भाष्यम्—एते औपशमिकादयः पञ्च भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा भवन्ति । तद्यथा । औपशमिको द्विभेदः क्षायिको नवभेदः क्षायोपशमिकोऽष्टादशभेदः औदयिक एकविंशतिभेदः पारिणामिकस्त्रिभेद इति । यथाक्रममिति येन सूत्रक्रमेणात ऊर्ध्वं वक्ष्यामः ।

विशेषव्याख्या—पूर्वोक्त औपशमिक आदि पांच भाव जो जीवके स्वतत्त्व हैं उनके भेद इस प्रकार हैं । जैसे औपशमिकके दो भेद, क्षायिकके नव भेद, क्षायोपशमिकके अठारह भेद, औदयिकके इक्कीस भेद, और पारिणामिकके तीन भेद हैं । 'यथाक्रम, इसका यह तात्पर्य है, कि जिस क्रमसे सूत्रमें उपनिबद्ध है, उसीसे ये भेद हैं । और जो जिसके भेद हैं, उनको क्रमसे आगे कहते हैं ॥ २ ॥

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—प्रथम अर्थात् औपशमिकके सम्यत्तव चारित्र दो भेद हैं ।

भाष्यम्—सम्यक्त्वं चारित्रं च द्वावौपशमिकौ भावौ भवत इति ।

विशेषव्याख्या—सम्यक्त्व तथा चारित्र ये दो प्रकार औपशमिक भावके हैं अर्थात् औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र दो भेद हैं ॥ ३ ॥

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—दूसरे अर्थात् क्षायिकके ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपयोग, वीर्य सम्यक्त्व और चारित्र ये नौ भेद हैं ।

भाष्यम्—ज्ञानं दर्शनं दानं लाभो भोग उपभोगो वीर्यमित्येतानि च सम्यक्त्वचारित्रे च नव क्षायिका भावा भवन्तीति ।

ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपयोग और वीर्य ये सात तथा च शब्दसे सम्यक्त्व और चारित्र मिलाकर नव प्रकारका क्षायिक भाव होता है, अर्थात् क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ॥ ४ ॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—चार प्रकारका ज्ञान, तीन प्रकारका अज्ञान, तीन प्रकारका दर्शन और पांच प्रकारकी लब्धि, तथा सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम ये अष्टादश भेद क्षायोपशमिक भावके हैं ।

भाष्यम्—ज्ञानं चतुर्भेदं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानमिति । अज्ञानं त्रिभेदं मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानमिति । दर्शनं त्रिभेदं चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनमिति । लब्धयः पञ्चविधा दानलब्धिर्लाभलब्धिर्भोगलब्धिरुपभोगलब्धिर्वीर्यलब्धिरिति । सम्यक्त्वं चारित्रं संयमासंयम इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिका भावा भवन्तीति ।

विशेषव्याख्या—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मनःपर्याय ज्ञान ये चार ज्ञान; मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगावधि ये तीन अज्ञान; चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ये तीन दर्शन; दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि, तथा वीर्यलब्धि ये पांच प्रकारकी लब्धि; इस प्रकार ज्ञानादि पन्द्रह और सम्यक्त्व, चारित्र, तथा संयमासंयम सब मिलाकर अठारह भेदवाला क्षायोपशमिक भाव है ॥ ५ ॥

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धत्वलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—चार गति, चार कषाय, तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक, असंयत एक, असिद्धत्व एक, और लेश्या छह; ये औदयिक भावोंके २१ भेद हैं ।

भाष्यम्—गतिश्चतुर्भेदा नारकतैर्यग्योनमनुष्यदेवा इति । कषायश्चतुर्भेदः क्रोधी मानी मायी लोभीति । लिङ्गं त्रिभेदं स्त्रीपुमान्नपुंसकमिति । मिथ्यादर्शनमेकभेदं मिथ्यादृष्टिरिति । अज्ञानमेकभेदमज्ञानीति । असंयतत्वमेकभेदमसंयतोऽविरत इति । असिद्धत्वमेकभेदमसिद्ध इति । एकभेदमेकविधमिति । लेश्या षड्भेदाः कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या । इत्येते एकविंशतिरौदयिकभावा भवन्ति ।

विशेषव्याख्या—नारक, तैर्यग्योनि मनुष्य और देव ये चार गति; क्रोध, मान, माया, तथा लोभ ये चार कषाय; स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये तीन लिङ्ग; मिथ्या-दृष्टिरूप मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक, अविरत असंयतरूप असंयत एक, असिद्धत्व एक, और कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या तथा शुक्ललेश्या इस प्रकार सब मिलकर इक्कीस प्रकार औदयिक भाव है ॥ ६ ॥

जीवभव्याभव्यत्वादीनि च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—जीवत्व, भव्यत्व, और अभव्यत्व ये तीनों पारिणामिक भाव हैं।

भाष्यम्—जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वमित्येते त्रयः पारिणामिका भावा भवन्तीति । आदि-ग्रहणं किमर्थमिति । अत्रोच्यते । अस्तित्वमन्यत्वं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं गुणवत्त्वमसर्वगतत्वमना-दिकर्मसन्तानबद्धत्वं प्रदेशत्वमरूपत्वं नित्यत्वमित्येवमादयोऽप्यनादिपारिणामिका जीवस्य भावा भवन्ति । धर्मादिभिस्तु समाना इत्यादिग्रहणेन सूचिताः । ये जीवस्यैव वैशेषिकास्ते स्वशब्देनोक्ता इति । एते पञ्च भावास्त्रिपञ्चाशद्भेदा जीवस्य स्वतत्त्वं भवन्ति । अस्तित्वाद-यश्च । किं चान्यत्—

विशेषव्याख्या—जीवत्व, भव्यत्व, तथा अभव्यत्व आदि पारिणामिक भाव हैं। पारिणामिक भावके तीन ही भेद कहे हैं, तब इस सूत्रमें आदिग्रहण क्यो किया? इसका उत्तर कहते हैं;—अस्तित्व, अन्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, गुणवत्व, असर्वगतत्व, अनादि-कर्मसन्तानबद्धत्व, प्रदेशत्व, अरूपत्व तथा नित्यत्व; इत्यादि और भी अनादिकालसिद्ध पारिणामिक भाव जीवके हैं। और ये अस्तित्वादि भाव धर्मादिके समान हैं, इसलिये आदिग्रहणसे उनको भी सूचित किया है। जो जीवके वैशेषिक अर्थात् जो विशेष करके जीवमें ही होते हैं, उनको तो पृथक् २ स्व शब्दसे कहा है। ये औपशमिकादि पांचों भाव मिलके त्रिपञ्चाशत अर्थात् ५३ भेद जीवके स्वतत्त्व हैं, अर्थात् निज विशेष भाव हैं, जो कि जीवमें ही होते हैं। और अस्तित्वादि भी जीवके भाव हैं ॥ ७ ॥ और भी कहते है;—

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—उपयोगवत्ता जीवका लक्षण है।

भाष्यम्—उपयोगो लक्षणं जीवस्य भवति ।

विशेषव्याख्या—जीवका उपयोग लक्षण होता है अर्थात् जीव उपयोगलक्षणयुक्त होता है ॥ ८ ॥

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—वह उपयोग दो प्रकारका है। एक अष्टविध है, और दूसरा चतुर्विध है।

भाष्यम्—स उपयोगो द्विविधः साकारोऽनाकारश्च ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेत्यर्थः ।